करता है। तीन पैसे संकटकालके लिये बचाकर रखता है। यह बचानेकी, संयम और निरभिमानताकी आदतें बनियोंमें कुलसे चली आती हैं। इसीलिये बनियेका पुत्र उन्हीं परिस्थितियोंमें अपनी आदतोंका निर्माण करता है। बनिया-परिवार बहुत कम गरीब होता है।

दूसरी ओर आजकलके दिखावटी, दंभी, झूठी शानमें मस्त 'बाबू' वर्गकी आदतोंको लीजिये। वे बाहरी दिखावा, सफेद लिबास, शृंगार, असंयम खूब करते हैं। महीनेमें पैंतालीस रुपये कमायेंगे और दिखायेंगे ऐसा मानो डेढ़ सौ रुपये कमाते हों। भले ही इस अपव्यय और मिथ्या शानको कायम रखनेके लिये ऋण लेना पड़े। पैन्ट भी हो, नेकटाई भी और सिनेमा-सिगरेट-पान भी। जूतेपर पालिश और बालोंमें सुगन्धित तेल यह दुनियाको धोखेमें डालनेके लिये एक कृत्रिम पर्दा खड़ा कर लेना चाहते हैं जिससे उनका असली स्वरूप प्रकट न हो सके। जो चार पैसे कमाकर छः पैसे व्यय करेगा, वह क्या कभी समृद्ध हो सकेगा? भले ही वह दो-चार वर्ष जनतापर झूठी शान जमा ले, किंतु उसकी नींव बालूपर ही स्थित समझनी चाहिये।

एक दिन मैं चमारसे जूता गठवा रहा था। कम उम्रका लड़का था, कमीज भी जरा उजली, धोती भी ढंगकी और बालोंमें तेल। बातें चल पड़ीं। मैंने पूछा, 'कितना कमाया है।' वह बोला—'अभी क्या, बाबूजी कुल छै-सात आने पैसे आये हैं, सिनेमाके लायक, बस। सिनेमाका शो देखते जायँगे। भोजनके लिये शामतक आठ आने और चाहिये।'

'क्या तुम रोज सिनेमा देखते हो?'

'शामका शो, पाँच पैसेकी बीड़ी, एक माचिस और दो बार पान, बस सरकार— यह नहीं छूटते। इनके लिये आठ-नौ आने, रोज— पहले इकट्ठे करते हैं। बादमें भोजन देखा जाता है। कभी-कभी भूखे पेट सोना पड़ता है।'

'पैसे ही नहीं हैं, सरकार। विवाहकर बीवी-बच्चोंको पालनके लिये एक डेढ़ रुपया चाहिये। यहाँ एक अकेले खुदका ही पेट नहीं भर पाता हूँ। बीवी-बच्चोंका भार कैसे सँभाला जाय? कपड़ेतकके लिये पैसा नहीं। रहनेको एक मित्रके टूटे छप्परमें पड़ रहता हूँ और ठिठुरकर रात काट देता हूँ।'

मुझे चमारकी गरीबीका रहस्य मिल गया था। वह था उसका असंयम और घृणित आदतें। उसकी आय एक रुपया प्रतिदिन थी जिसे जोड़ने और समझदारीसे

व्यय करनेपर वह एक भले नागरिक-जैसा जीवन व्यतीत कर सकता था। पर नहीं, कौन उसकी आदतोंपर नियन्त्रण करे? एक बार जिस रास्तेपर चल पड़े हैं, उसीपर चले जा रहे हैं। मनुष्यकी आदतें भी बड़ी जटिल होती हैं।

मुझे इस उक्तिमें बड़ा भारी सत्य दिखायी देता है—

'पूत कपूत तो क्यों धन संचै?'
पूत सपूत तो क्या धन संचै?'

यदि आपका पुत्र कपूत है, तो उसके लिये धन एकत्र करनेसे क्या लाभ? अपनी गंदी अपव्ययी आदतोंके कारण वह सब नष्ट कर देगा। यदि आपका पुत्र सपूत है, तब भी धन-संचयसे कोई लाभ नहीं। कारण, अपनी मितव्ययी एवं संयमी आदतोंके बलपर वह पूँजी स्वयं एकत्रित कर लेगा। हमारी आदतें ही हमारी गरीबी या अमीरीका कारण हैं।

भारत-विभाजनके प्रसंगमें असंख्य परिवार लुट गये। धनवान् गली-गलीके मुहताज बन गये; दूकानदारोंकी दूकानें लुटीं, जमीन-जायदाद, घर-बार जाते रहे। पर उनकी आदतें न छूटीं, न छीनी गयीं। हमने आश्चर्यसे देखा, हमारे शहरमें आये हुए पचास फीसदी शरणार्थी अपनी अल्प पूँजीपर मजबूत संयमी एवं मितव्ययी आदतोंके बलपर पुनः समृद्धिशाली बन गये; उनके रोजगार चल निकले; चार पैसे फिर एकत्रित हो गये। दूसरी ओर पाकिस्तानमें गये मुसलमान अपनी असंयमी अपव्ययी आदतोंके बलपर दरिद्र और पतित हो गये। पंजाब उजड़ गया। हरे-भरे खेत वीरान बन गये। आलीशान मकानोंपर पीक और बीड़ीके टुकड़े नजर आने लगे। जिस पंजाबमें अनाजका कोष था, जो सारे भारतको पालता था, वही पंजाब आरामतलब मुसलमानोंके हाथमें आकर अकाल-पीड़ित बन गया। इधर भारतमें श्रमी हिंदुओंने रेगिस्तानी इलाकोंमें भी नहरें निकाल डालीं। ये हैं, मनुष्यकी व्यक्तिगत अच्छी-बुरी आदतोंके परिणाम। हम नागरिकोंकी व्यक्तिगत आदतोंसे ही राष्ट्रके चरित्रका निर्माण होता है। यदि राष्ट्रको समुन्नत करना है, तो प्रत्येक नागरिकके चरित्रमें श्रम, मितव्यय, संयम, संगठन और ईमानदारीको स्थान देना होगा।

व्यक्ति-निर्माणसे राष्ट्र-निर्माणका कार्य होता है। अतः हममेंसे प्रत्येक माता-पिता, भाई-बहिनका कर्तव्य हो जाता है कि बच्चोंमें आदतरूपी मानसिक मार्गोंका निर्माण करें।

प्रथम उत्तम आदत स्वास्थ्य और संयमकी है। इससे मानवकी मौलिक उन्नति होती है। शरीर स्वस्थ और नीरोग बनता है। व्यसनोंसे विशेष सावधान रहनेकी आवश्यकता है। प्रत्येक बच्चेको स्वस्थ आदतोंमें पालना चाहिये। चाय, तम्बाकू, पान इत्यादि तथा सिनेमाकी गंदी तस्वीरों तथा उत्तेजक साहित्यसे दूर रखनेकी आवश्यकता है।

मानसिक आदतोंमें संयम, नियमितता, निरभिमानता, सादगी और सचाईकी आदतोंकी अतीव आवश्यकता है। हम जैसे हैं, वैसे ही दूसरोंके समक्ष उपस्थित हों; स्वयं अपनेको या दूसरेको धोखेमें न डालें—यह बड़ी उपयोगी वृत्ति है।

जो आय हो, उसीमें जीवनकी समस्त आवश्यकताओंकी पूर्ति हो जाय, ऋण लेनेकी आवश्यकता न पड़े, वरं कुछ-न-कुछ प्रतिमास बचता रहे, ऐसी योजना बनाकर चलना चाहिये, ज्यों-ज्यों आमदनी गिरे, त्यों-त्यों आवश्यकताएँ भी तदनुसार कम होती रहें।

ईश्वरमें विश्वास होना चाहिये। यदि हम कोई पाप करेंगे, तो ईश्वर हमें दण्ड देंगे; आज नहीं तो कल हमें अपने पापोंका दण्ड अवश्य मिलेगा; हम उससे बच नहीं सकते; जगन्नियन्ताको धोखेमें नहीं डाल सकते; अतः हमें धर्म-भीरु बनकर सन्मार्गका ही पथिक बनना चाहिये। सत्य, प्रेम, न्याययुक्त जीवन ही सुख-शान्तिमय होता है, सदा श्रमी ही विजयी होता है, यह आदतोंमें सम्मिलित कर लेना चाहिये।

वासनाकी पूर्ण तुष्टि सम्भव नहीं है। यह मानना गलत है कि वासना-पूर्तिसे स्वयं विरक्ति हो जायगी। वासनाओंकी भट्ठी निरन्तर अधिकाधिक जलती रहेगी। मन एक स्त्रीसे दूसरीपर हमेशा भागता रहेगा। अतः उसको वासनासे विरक्तिकी आदत डालनी होगी। उसे सिनेमा, अश्लील साहित्य, गंदे विचार, व्यभिचार इत्यादिसे बराबर खींचकर सत्कार्योंमें लगाना होगा। सत्-चिन्तन, सद्ग्रन्थावलोकन, सत्पुरुषोंकी सेवा, सत्संगमें लगानेकी आदतोंका निरन्तर विकास करना चाहिये। सत्-चिन्तन, उच्चकार्योंकी प्रवृत्ति भी एक प्रकारकी आदत ही है। अतः प्रारम्भसे ही इन अच्छी आदतोंकी ओर प्रवृत्ति रखनी चाहिये। मनुष्यकी आदतें ही सच्चे व्यक्तित्वका निर्माण करती हैं।

स्वभाव कैसे बदले?

क्या मानव-स्वभाव परिवर्तित हो सकता है? कई महानुभाव कह उठते हैं, 'क्या बतायें, हमारा तो क्रोधका स्वभाव है, हमें जल्दी ही गुस्सा आ जाता है। हम उत्तेजनाको रोक नहीं पाते। लड़ बैठते हैं। हमारी किसीसे नहीं बनती।' कुछ व्यक्ति दूसरोंकी टीका-टिप्पणी करने, दोष निकालने, पीठ पीछे बुराई करनेमें बड़ा आनन्द लेते हैं। वे जानते हैं कि यह उनके स्वभावका दोष है पर बेचारे स्वभावसे विवश हैं।

मानव-स्वभावको बदला जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति यदि अभ्यास करे, तो वह अपनी पुरानी बुरी आदतें छोड़कर अच्छी आध्यात्मिक आदतें धारण कर सकता है। प्रेम, सहानुभूति, मैत्री भाव इत्यादि प्रत्येक आदतका विकास निरन्तर अभ्याससे होता है।

आदतें हमारा स्वभाव निर्माण करती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे प्रत्येक आदत एक मानसिक मार्ग है। पुनः-पुनः एक कार्यको दोहरानेसे एक विशेष प्रकारकी आदतका निर्माण होता है। प्रत्येक गंदी आदतका विरोधी शुभ भाव बढ़ानेका अभ्यास करें। इस नवीन आदतको दृढ़ संकल्पसे बढ़ाते रहें। जो न्यूनताएँ या असभ्यताएँ आपके चरित्रमें आ गयी हैं, उन्हें निकालनेके लिये उनकी विरोधी शिष्टताओंको धारण कर प्रत्येक व्यक्ति नये व्यक्तित्वका निर्माण कर सकता है।

अशिष्ट आदतोंकी मानसिक जड़ें बचपनके दूषित कुसंस्कार हैं, जिन्हें बच्चे घरसे, मुहल्लेके गंदे बच्चोंसे तथा स्कूलसे सीखते हैं। ये अन्तर्मनमें प्रविष्ट होकर जटिल ग्रन्थियाँ बन जाती हैं।

इसके विपरीत जो शिष्टताकी आदतें हमारे बचपनमें बरबस अन्तर्मनमें प्रविष्ट करा दी जाती हैं, वे हमारे आकर्षणका विषय बन जाती हैं। छोटे बच्चोंको शिष्टाचार-सम्बन्धी शिक्षा न देनेके कारण उनका उच्च सोसाइटीमें

प्रविष्ट होना कठिन हो जाता है। बच्चे निरन्तर हमारा अनुकरण किया करते हैं।

यदि हम अपने बच्चोंको शिष्ट, सभ्य, आकर्षक, सुन्दर और उत्तरदायित्वपूर्ण नागरिक बनाना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि हम स्वयं उनके सम्मुख शिष्ट व्यवहारका ऐसा नमूना प्रस्तुत करें, जिसका अनुकरण उन्हें जीवनमें उत्साह और प्रेरणा प्रदान कर सके। जो माँ-बाप स्वयं व्यवहारमें ढीले-ढाले हैं, प्रातःकाल शय्या त्यागने, दन्तमंजन, स्नान, पूजापाठ या वस्त्र-धारण तथा उन्हें यथास्थान रखनेमें नियमोंका पालन नहीं करते, उनके बच्चे, जो चौबीस घंटोंमें पंद्रह-सोलह घंटे उनके साथ रहते हैं, किस प्रकार सभ्यता और शिष्टाचारका पाठ पढ़ सकते हैं?

जैसे हम हैं, वैसा ही हमारा वातावरण भी है। सभ्य व्यक्तिकी प्रत्येक वस्तु आपको यथास्थान साफ-सुथरी, आकर्षक मिलेगी। जूतोंसे लेकर कमीज, कोट, टोपी या बाल काढ़नेका कंघातक स्वच्छ रखा मिलेगा। उसके जूतोंपर न मैल होगा, न कंघेमें बाल लगे हुए होंगे। उसके कोट या पतलून या धोतीमें शिकन न मिलेंगी। वह वस्त्रोंकी देखभाल, सँभालके कारण दूसरोंसे आधे वस्त्रोंमें भी आकर्षक प्रतीत होगा। कम खर्चेमें वह अधिक तरहके सुख प्राप्त कर सकेगा। उसे लम्बा-चौड़ा बढ़िया मकान नहीं चाहिये। छोटेसे मकानमें, या एक कमरेका ही वह इतना उत्कृष्ट प्रयोग करेगा कि उसकी सभ्यता प्रकट हो जायगी। शिष्टाचारका अर्थ यही नहीं कि आप दूसरोंके साथ कैसा व्यवहार करते हैं। स्वयं अपने साथ भी आपका व्यवहार उत्तम होना अनिवार्य है। यदि आप अपने साथ दुर्व्यवहार करते हैं, तो बड़ा पाप करते हैं।

आप पूछेंगे कि हम अपने साथ किस प्रकार दुर्व्यवहार करते हैं? इसके अनेक रूप हैं। आप जानते हैं कि ठीक समयपर उठने, व्यायाम करने, टहलने या विश्राम करनेसे आपका स्वास्थ्य ठीक रहता है; किंतु शोक! आप न तो ब्राह्म मुहूर्तमें उठते हैं, न व्यायाम, टहलना या विश्राम करते हैं। आप रुपयेके लोभमें दिन-रात तेलीके बैलकी तरह पाई-पाई इकट्ठी करनेमें मारे-मारे फिरते हैं। आपके पास पर्याप्त धन है, जिसके द्वारा आप भोजन, वस्त्र तथा अच्छे मकानका प्रबन्ध कर सकते हैं; किंतु आप कंजूसीके कारण इनमेंसे कोई भी

काम नहीं करते। यह सब अपने प्रति दुर्व्यवहार है।

अपने शरीरकी बुराईकी तरह जानते-बूझते आप अपने बच्चोंकी आदतों या सभ्यतासे गिरे हुए व्यवहारको नहीं रोकते या उनकी गलतीपर सजा नहीं देते, तो आप अन्याय करते हैं। अपनी पत्नीकी असभ्यताओंको रोकना आपका एक पुनीत कर्तव्य हो जाता है। परिवारके और सदस्योंकी खराबियों या अशिष्टताओंका आप शिष्ट रीतियोंसे परिष्कार कर सकते हैं; अपने अधीन नौकरों आदिको अशिष्टतासे रोककर आप समाजमें अच्छाइयोंके बीज बो सकते हैं। यदि ऐसा नहीं करते, तो यह आपका दुर्व्यवहार है।

आपकी दृष्टि कमजोर है; किंतु फिर भी आप सिनेमा देखते हैं, मिर्च-मसाले, खट्टी चीजोंका व्यवहार करते हैं, यह अपने प्रति दुर्व्यवहार हुआ; अपने अंदर किसी मादक द्रव्यको लेनेकी आदत डालकर विषपान करना आत्मघात करनेके बराबर गर्हित है।

शक्तियोंको खोलनेका मार्ग

मनुष्यका यह स्वभाव है कि दूसरे आदमी उसे जैसा पुनः-पुनः कहते हैं, धीरे-धीरे वह स्वयं भी अपने बारेमें वैसा ही विश्वास करने लगता है। उसका गुप्त मन दूसरोंकी बातोंको चुपचाप पकड़ता रहता है और अन्ततः वह उन्हींके अनुसार ढल जाता है।

चाहे हम ऊपरसे दूसरोंकी बातोंसे मन फेर लें; किंतु, दूसरोंकी बातचीत और टीका-टिप्पणीका गुप्त प्रभाव हमारे ऊपर बहुत जल्द पड़ता है। किसीको आप जैसा कहते रहें, वह धीरे-धीरे वैसा ही होकर रहता है। हमारी यह आन्तरिक कामना रहती है कि दूसरे व्यक्ति हमें अच्छा कहें, हमारे गुणोंकी प्रशंसा करें, हमारी महत्ता स्वीकार करें और तभी हमें अपने अच्छे मनपर विश्वास भी होता है, जब लोग हमें अच्छा कहते हैं। हम चाहे वास्तवमें लाख अच्छे ही हों; पर यदि हमें अपने अच्छेपनका सबूत दूसरोंके शब्दोंद्वारा नहीं मिलता, तो हमारे गुप्त मनपर गहरा आघात पहुँचता है। हमारे अच्छेपनके गुण क्षीण होने लगते हैं। कभी-कभी तो हमारा मन विद्रोह कर उठता है और हम दुर्गुणीतक बन जाते हैं। कहा जाता है कि रावण एक विद्वान् सद्गुणी ब्राह्मण था। पर जब संसारने उसके सद्गुणोंको स्वीकार कर प्रोत्साहन न दिया तो उसका व्यक्तित्व विद्रोही बन गया। उसके सद्गुण विलुप्त हो गये और असुरत्व विकसित हो उठा। यदि उसके दिव्य गुणोंको पर्याप्त प्रोत्साहन लगातार मिलता रहता तो वह भी भारतका कोई ऋषि बनता। जन्मसे ब्राह्मण, अनेक वेदोंका पण्डित, ज्ञानी, विचारक एक असुर बन गया। यह है गलत दिशामें प्रोत्साहन देनेका दुष्परिणाम।

श्रीश्रीप्रकाशजीने एक बार श्रीमती ऐनी बेसेन्टसे पूछा था कि 'हम भारतीयोंमें क्या दोष है कि हम उन्नति नहीं कर पाते। हमें सफलता नहीं होती और हम तथा हमारे कार्यकर्ता हारकर बैठ जाते हैं?'

श्रीमती ऐनी बेसेन्ट शिष्टाचारकी मूर्ति थीं। वे किसीके हृदयको कष्ट देना

नहीं चाहती थीं। बड़े-बड़े संघर्षोंके समय भी सौम्य संयत भाषाका ही प्रयोग करती थीं। व्यक्तिगत स्नेह बनाये रखनेकी कलामें भी अपूर्व रीतिसे प्रवीण थीं। उनके सार्वजनिक विरोधमें भी इसी कारण कोई कर्कशता कभी नहीं आती थी। वे उत्तर देनेमें संकोच कर रही थीं। श्रीश्रीप्रकाशजीने बार-बार आग्रह किया, तो उनका उत्तर वास्तवमें नई रोशनी देनेवाला था। थोड़े-से शब्दोंमें उन्होंने बहुत बड़े अनुसंधानका परिणाम बतलाया था।

उन्होंने केवल इतना ही कहा था, 'तुमलोगोंमें उदारता नहीं है' (यू आर नाट ए जेनरस पीपुल)।

उदार नहीं हैं? हिंदूजाति तो पशु, कीट, पतंगतककी हत्या नहीं करती, अहिंसाका सदा पालन करती है। फिर हम कैसे, क्योंकर उदार नहीं हैं?

प्रश्नका उत्तर श्रीश्रीप्रकाशजीके शब्दोंमें सुनिये, 'यकायक सुननेमें यह अनुदारताकी बात हिंदूजातिके लिये बहुत कड़ी मालूम पड़ती है। हम भारतीयोंका विशेषकर हिंदुओंका यही विचार है कि हम बड़े दानी, उदार, सहनशील, सर्वलोकहितैषी हैं। हमारे मठ, मन्दिर, अन्न-क्षेत्र, सदाव्रत, धर्मशाला इत्यादि हमारी दानशीलता और उदारवृत्तिके सहस्रों वर्षोंसे सूचक रहे हैं। हम भारतीयोंसे बढ़कर कौन उदार हो सकता है?'

श्रीमती ऐनी बेसेन्टको भी, यह कहते हुए, इस कड़वी दवाकी छोटी-सी घूँट पिलाते हुए अवश्य कष्ट हुआ। वे तो सदासे ही भारतीयोंकी प्रशंसक थीं। वे तो हमारी कुरीतियोंकी भी जैसे समर्थक मालूम पड़ती थीं। लेकिन जिस त्रुटिकी ओर उन्होंने हमारा ध्यान आकृष्ट किया था, वह गुण-ग्राहकताका अभाव था। दूसरोंको प्रोत्साहन देनेमें उदारताकी कमी थी।

वास्तवमें प्रोत्साहनका अभाव हमारे राष्ट्रीय जीवनकी एक बड़ी कमजोरी बन गयी है। हम दूसरेके प्रति दो-चार अच्छे या मीठे शब्द कहनेके बजाय उसे तुच्छताका भ्रम कराना ही पसंद करते हैं। बहुत-से माता-पिता, शिक्षक इत्यादिमें यह खोटी आदत होती है कि बच्चोंकी जरा-सी भूलोंपर अथवा शीघ्र पाठ न समझ सकनेपर चिढ़कर कटु वचनोंका उच्चारण करने लगते हैं। 'तुमसे कुछ न होगा। तुम्हारे दिमागमें भूसा भरा हुआ है। तुमसे जीवनमें कुछ न होगा।' इन संकेतोंका ऐसा कुप्रभाव पड़ता है कि कोमल शिशु अपनी महानताको नहीं पहचान पाता। बालक वैसे ही भावुक होता है। जरा-सी

मानसिक ठेससे उसमें तुच्छताकी हानिकर भावना जड़ पकड़ जाती है और उसकी बाढ़ हमेशाके लिये रुक जाती है। आप गम्भीरतासे देखें तो आपको अनेक ऐसे डरे-दुबके भीरु प्रकृतिके अधपनपे बच्चे मिल जायँगे जो इस तुच्छताकी ग्रन्थिसे परेशान अपनी महानता न खोज सके हैं, न पनपा ही सके हैं।

एच० जी० वेल्स नामक अंग्रेजीके एक प्रख्यात लेखक हो गये हैं। बचपनसे ही उन्होंने थोड़ा-थोड़ा लिखना शुरू कर दिया था। वे अपने अपरिपक्व विचारोंसे युक्त लेख पत्र-पत्रिकाओंमें छपनेके लिये भेजा करते थे। बहुत-से नयी उम्रके लड़के इस प्रकार कलम चलाया करते हैं। एक बार अंग्रेजीके एक बड़े सम्पादकके हाथमें युवक एच० जी० वेल्सका एक लेख आया। उसे पढ़नेपर उन्हें इस नये लेखकमें गहराई और वजन मालूम हुआ। उन्होंने उसके लेखको सुधारकर छापा। वेल्सको प्रोत्साहन मिला। सम्पादकने उनसे और लेख माँगा। उन्होंने उसे खुश करनेके लिये और भी श्रम लगाकर एक नया लेख लिखा, वह भी छपा। इसी प्रोत्साहनको पाकर एच० जी० वेल्स अंग्रेजीके अमर लेखक बन गये। कल्पना कीजिये कि यदि यह प्रोत्साहन न मिलता तो वह अन्य लेखकोंकी तरह विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो जाते। उचित प्रोत्साहनके अभावमें सैकड़ों कवियोंकी इच्छा, अभिलाषाएँ तथा महत्त्वाकांक्षाएँ सूखकर नष्ट हो जाती हैं।

यदि आप कहें कि ताड़ना या कठोर वचन कहकर डरानेसे लोग सुधरते हैं, तो यह ठीक नहीं है। डराने-धमकानेसे और कुछ भले ही हो जाय, सुधार नहीं होता। दोषीके मनमें आपके प्रति घृणाकी भावना उत्पन्न हो जाती है। विषभरे वाक्य आदमी कभी नहीं भूल पाता। व्यंग्य-बाण हृदयमें बिंधे रहते हैं। इसलिये जिसका सुधार करना हो, उसके सद्गुणोंको सही दिशामें प्रोत्साहित कर उसकी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्तियोंका मार्ग खोलिये।

बहम, शंका, संदेह

बहम एक अँधेरा है, जो मनुष्यकी चित्त-वृत्तिको भ्रान्त और संकल्प-शक्तिको क्षीण करता है। बहमी आदमी तनिक-तनिक-सी बातोंमें संदेह करता है। भोजन करते समय उसे यह संदेह होता है कि कहीं इसमें विष न मिला हो अथवा अमुक वस्तु खानेसे स्वास्थ्यको हानि पहुँच जायगी। मैंने अमुक वस्तु खा ली इसीलिये स्वास्थ्य नष्ट हो रहा है। दाल मुझे भारी पड़ती है। रात्रिमें दही खाऊँ या नहीं? शंकाशील स्वभावका व्यक्ति यदि किसी यात्रापर जायगा तो सोचेगा कि आज मुहूर्त कौन है? आजका दिन शुभ है अथवा अशुभ? आज चलनेसे पूर्व ज्योतिषी या पण्डितसे पूछ लेना चाहिये। कहीं रेलें न लड़ जायँ, जहाज न डूब जाय, अकस्मात् ताँगा और मोटरमें भिड़न्त न हो जाय, बिजली न गिर पड़े अथवा ट्रेनमें आग न लग जाय आदि। वह अपना रुपया किसीको देता है तो बार-बार गिनता है, अनेक प्रश्न करता है, बैंकोंके स्थायित्व तथा फेल हो जानेकी शंका करता है। यदि मेरा रुपया मारा गया तो क्या करूँगा? अमुक-सा रोग उत्पन्न होते ही उसे बहम होता है कि मैं इस रोगसे मर न जाऊँ। कहीं मुझे कोई घातक रोग तो नहीं है? यह रोग किसीके जादू-टोनेका दुष्परिणाम तो नहीं? इस मकानमें किसी प्रेतात्माका प्रभाव तो नहीं?

शंकाशील स्वभावमें दु:खी होनेके लिये तनिक-सा सहारा मिलते ही क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। मन गलत दिशामें स्वयं अपने विरोधमें अपना शत्रु बन जाता है। बहमी मनुष्य सदा व्याकुल बना रहता है, वह ठीक और गलतका निर्णय नहीं कर पाता। विवेक ही हमारी वह शक्ति है, जो सत्प्रेरणा देती है और उचित निर्णय करनेमें सहायक होती है। यह संरक्षक सत्ता प्रत्येक मनुष्यके अन्त:करणमें निवास करती है और उसे ठीक स्थितिमें रखती है। मनुष्य यदि विवेकके प्रकाशमें चलता रहे तो बुद्धि निर्णय करनेमें सफल होती है। दु:ख-कष्टोंकी सम्भावना कम होती है। संशय मिट जाते हैं।

शंका, संदेह और बहम मनुष्यकी भारी कमजोरियाँ हैं। बार-बार इन मानसिक बीमारियोंमें फँसे रहनेसे मनुष्यका मन दुर्बल हो जाता है और ये मनुष्यको किसी भी उत्तरदायित्वपूर्ण पदके उपयुक्त नहीं छोड़तीं। बहमी व्यक्ति धीरे-धीरे अविश्वासी, संकोची और कायर बन जाता है। वह तनिक-सी बातसे भयभीत और झूठी कल्पनाओं और मिथ्या भयोंमें लिप्त रहता है।

अत्यधिक शंका करनेका परिणाम नाश होता है। **'संशयात्मा विनश्यति'**। अत्यधिक शंकाशील व्यक्ति चिन्तित और निराश रहता है। उसके मनमें नाना विरोधी विकारों—जैसे ग्लानि, लज्जा, अस्थिरता, कायरता, असंतोष, उदासीनता और कुतर्कका संघर्ष चलता रहता है। उसका जीवन अव्यवस्थित और अशान्त हो जाता है। मानसिक व्याकुलता तथा दुर्बलता बढ़ती जाती है और स्मरण-शक्तिका विनाश हो जाता है।

शंका और संदेहसे मुक्तिके साधन हैं दृढ़ता, विवेक और मनोबलमें वृद्धि। जिस कार्यके विषयमें सोचें, उसपर शीघ्र निर्णय करें। हर एक दृष्टिकोणसे देखनेके पश्चात् किसी निर्णयपर जल्दी ही आ जायँ। एक बार निश्चय कर उसीपर डटे रहें। गलती और असफलताकी कल्पना न करें। यदि हो जाय तो कारण जानकर उन्हें दूर करें। व्यर्थ ही मिथ्या भ्रमोंसे लिप्त न रहें। जिन वस्तुओं या परिस्थितियोंसे भयभीत हैं, वे वास्तवमें होनेवाली नहीं हैं। कल्पित भयोंको मनसे सदाके लिये निकाल दीजिये। निडर बनिये।

आप जीवन-संग्राममें प्रविष्ट हों तो मन, वचन और कर्ममें सामंजस्य कर यह भावना कीजिये कि आपका भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल होगा और आप अपनी आकांक्षाओंको पूर्णतया प्राप्त करेंगे, आप पूर्ण उन्नतिशील तथा सुखी होंगे, आपको सफलता और विजय प्राप्त होगी, सब प्रकारकी स्फूर्तिदायक सामग्री मिलेगी। सर्वप्रथम इसी भावनाको अपने मनमें स्थिर कीजिये। बार-बार अपने मनको इसी दिशामें अर्थात् अपनी उन्नतिकी ओर सोचनेमें लगाइये। एकान्तमें अपने इन निश्चयोंको और दृढ़ कीजिये।

आप ऐसा सोचिये, मानो आपके मनोरथ क्रमशः आपकी ओर आकृष्ट होकर आपके पास आ रहे हैं। आपकी कठिनाइयाँ सरल होती जा रही हैं। आप

क्रमशः शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सिद्धियाँ प्राप्त करते जा रहे हैं।

अपनी आशाओंको निर्बल न होने दीजिये, प्रत्युत उन्हें कार्यद्वारा और भी दृढ़ बनानेका प्रयत्न कीजिये। कोई बात नहीं, यदि आपको प्रारम्भमें कुछ प्रतिकूलताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। प्रत्येक महापुरुषके जीवनमें ऐसा ही हुआ है, किंतु वे सबल इच्छाशक्तिसे सदा सफल हुए हैं। आपका मार्ग भी शीघ्र ही निष्कण्टक होनेवाला है। यह निश्चय कर लीजिये।

आशापूर्ण कल्याणमय पवित्र चित्रोंको मन-मन्दिरमें सजाना भी एक कला है। यह सफलताका प्रथम पग है। इसमें पारंगत बनकर कठोर कार्यमें आगे बढ़ते हुए सफलताके मीठे फल चखिये। आप चाहे किसी भी क्षेत्रमें आगे बढ़ें, शंकाओंका परित्याग कर पूर्ण दृढ़तासे अग्रसर हों, आरम्भसे ही अपनी विशेषताएँ दिखाइये और शुभ भविष्यको देखनेकी आदत डालिये। आजसे ही शुरू कीजिये।

एकान्तमें यदि कभी अपने प्रति अविश्वास, शंका या संदेहके कायर विचार मनमें आयें, तो सावधान हो जायँ। इसके विपरीत प्रचुर मात्रामें आशा, उत्साह, वीरता और साहसके मजबूत विचार मनमें आने दीजिये। अपने-आपको विवेक-बुद्धिकी तराजूपर तौलिये। जिस बातको आपकी विवेक-बुद्धि स्वीकार कर ले, उसीको मनमें रखिये। दोषका तिरस्कार कीजिये। तनिक सोचिये, यदि आप छोटी-छोटी-सी बातोंपर भय या संदेह करते रहेंगे और अपने-आपको नहीं सँभालेंगे, अपनी गुप्त शक्तियोंका विकास नहीं करेंगे, तो आपका ठौर-ठिकाना कहाँ होगा? कौन आपको पूछेगा? मिथ्या भयों, कल्पित चिन्ताओं तथा अविचारोंको आज ही सदाके लिये मनसे दूर कर दीजिये।

संशय करनेवालेको सुख प्राप्त नहीं हो सकता!

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—**'संशयात्मा विनश्यति'** जो मनुष्य संशय करता रहता है, वह इस लोक या परलोक—कहीं भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता। संदेहवृत्ति उसका नाश कर देती है।

मैं अमुक कार्य करूँ अथवा न करूँ? यह संशयवृत्ति हमें उस कार्यको नहीं करने देती। हम सोचते ही रह जाते हैं कि इस कार्यको करें या न करें। अन्ततः वैसे-के-वैसे ही रह जाते हैं।

अर्जुनके सामने कौरवोंकी बड़ी-बड़ी सेनाएँ सजी हुई खड़ी थीं। उनमें उनके कुछ बन्धु-बान्धव तथा दूरके रिश्तेदार भी थे, जिनसे उसका रक्तका सम्बन्ध था। कौरव अन्यायके पथपर चल रहे थे और राज्यमेंसे पाँच गाँव भी पाण्डवोंको नहीं देना चाहते थे। अर्जुन सोचने लगे कि स्वयं अपने परिवारके सदस्योंका वध करनेसे तो भयानक पाप लगेगा। यदि इनका वध नहीं करता हूँ, तो देवी द्रौपदीके अपमानका बदला नहीं उतरता है, न राज्य ही प्राप्त होता है। उलटे ये ही मुझे मार डालेंगे। उनके मनमें एक ओर दयाकी भावना थी, दूसरी ओर कर्तव्य तथा भावी जीवनके विचार। इन दोनोंमें द्वन्द्व मचा हुआ था। दया कहती थी कि ये तेरे भाई हैं, परिजन हैं, इनका वध मत कर। कर्तव्य कहता था, अन्याय और असत्य मार्गपर चलनेवाला कभी बन्धु और परिजन नहीं हो सकता। वह तो शत्रु है। प्राणोंका प्यासा है। इसलिये उसका वध कर देना चाहिये। वे संशयमें फँसे हुए थे कि किस पक्षमें निर्णय करें। इस स्थितिमें भगवान् श्रीकृष्णने उनकी सहायता की और कहा कि वृथा मोहमें मत पड़ो। अपना कर्तव्य पालन करो। इस संकेतको सुनकर अर्जुनका संशय दूर हो गया और वह युद्ध करनेको तैयार हो गया। जबतक संशयमें लगा रहा, तबतक शक्तियाँ पंगु रहीं।

यही हाल उस व्यक्तिका होता है जो खड़ा-खड़ा यही सोचता है कि क्या करूँ? किस ओर बढ़ूँ? किसपर विश्वास करूँ, किसपर न करूँ? कोई मेरी सहायता करेगा अथवा नहीं? मेरा स्वास्थ्य अमुक कार्यको सम्पन्न करनेके योग्य है अथवा नहीं? मेरी तैयारी परीक्षाके लिये उपयुक्त है अथवा अनुपयुक्त? अमुक व्यापारमें मुझे हानि होगी अथवा लाभ?

जो वास्तवमें कमजोर हैं या जिनकी तैयारी अपर्याप्त है, वे यदि संशय करें तो उचित भी माना जा सकता है, लेकिन खेद तब होता है, जब समर्थ और योग्य व्यक्ति सर्वसम्पन्न होते हुए भी अपनी शक्तियोंके प्रति संशय करते रहते हैं और उसके कुफल भोगते रहते हैं। संशयवृत्तिका तात्पर्य है स्वयं अपनी शक्तियोंके प्रति अविश्वास। जीवनके आनन्द और उन्नतिके लिये इस प्रवृत्तिको छोड़ दीजिये।

एक बार रात्रिमें एक व्यक्तिको लघुशंका हुई। भयंकर जाड़ा था। उसकी पत्नीने सफेदीके तसलेको ला दिया। पतिने उसीमें मूत्र कर दिया। सुबह उठे तो वह मूत्र सफेदीमें मिला हुआ दिखायी दिया। पति संशयसे भर गये। जरूर मेरे मूत्रमें कोई विकार है। यह सफेद-सफेद क्या तत्त्व मूत्रमार्गसे बहने लगा है? मुझे कोई भयंकर मूत्र-रोग हो गया है। वैद्यके पास गये। उन्होंने बिना पूर्ण जाँच-पड़तालके कह दिया कि तुम्हारे मूत्रसे शक्कर आने लगी है। तुम्हें डाइबिटीज रोग हो गया है। सम्भव है और भी कोई घृणित रोग हो। यह सुनकर वह व्यक्ति रोगी बन गया। निरन्तर इसी भ्रम—संदेहमें रहता कि मुझे भयंकर रोग हो गया है और मैं जल्दी ही मृत्युका ग्रास बन जाऊँगा। वैद्यजी दवाइयाँ देते और उससे रुपया लेते रहे। एक दिन संयोगसे उनका उतरा हुआ चेहरा देखकर मैंने ही पूछा, 'कहो मोङ्गूलालजी, क्या बात है?' उन्होंने उत्तर दिया, 'डाइबिटीज हो गयी है। इलाज चल रहा है।' और गहराईमें गये, तो उन्होंने अपने मूत्रमें सफेदी आनेकी बात कही।

'क्या आपने मूत्रकी वैज्ञानिक परीक्षा करायी है?'

'नहीं, डॉक्टरके पास तो नहीं गया।'

'तो पहले शफाखानेमें जाकर मूत्रकी परीक्षा जरूर कराओ। फिर इलाजकी सोचो। इस इलाजसे काम नहीं चलेगा।'

दूसरे दिन वे डॉक्टरके पास शीशीमें मूत्र ले गये। वैज्ञानिक परीक्षा हुई, तो मालूम हुआ शक्कर नहीं आती है। और भी कोई खराबी नहीं है।

यह नतीजा देखकर वे फिर उसी रातके विषयमें सोचने लगे। उनकी पत्नीको स्मरण हुआ कि उन दिनों दिवालीके सिलसिलेमें उनके यहाँ पुताईका काम चल रहा था। कलीसे सना हुआ तसला पास ही अंदर पड़ा था। उसीमें पेशाब कराया गया था। इसलिये वह सफेदी पुतनेवाली कलईकी थी। गाँठ खुल गयी। संशय दूर हो गया। उसी दिनसे मोडूलालजी स्वस्थ होने लगे और कुछ दिनों पश्चात् बिलकुल स्वस्थ हो गये। संशयका पर्दा छाते ही मनुष्य हतप्रभ हो जाता है। उसका विवेक पंगु हो जाता है। दूर होनेपर फिर प्रभावान् हो उठता है।

अपने अध्यापक-जीवनकी एक घटना मेरे स्मृति-पटलपर सजग हो आयी है। मानिकलाल इंटरके विद्यार्थी थे, परिश्रमी और साधारणतया बुद्धिमान् !

संयोगसे वार्षिक परीक्षामें तर्कशास्त्र (Logic) में फेल हो गये। फेल होते ही उनके मनमें कुछ ऐसा संशय बैठा कि जब कभी तर्कशास्त्रका क्लास होता, उसमें मन-ही-मन डरते रहते। यह नहीं कि पढ़ते न हों। पढ़ते वे बहुत थे, पर मनमें यह संशयवृत्ति रखकर कि यह विषय मुझे कम आता है, मैं कहीं आगे भी फेल न हो जाऊँ।

दूसरे वर्ष वार्षिक परीक्षा फिर आयी। मानिकलालकी तैयारी बहुत थी। वर्षभर दिल लगाकर पढ़ा था। और विषयोंके पर्चे अच्छे हुए। दूसरे दिन तर्कशास्त्रकी परीक्षा थी। आजसे ही उनके मनमें धुकधुकी थी, मनका संशय उभर रहा था। मैं सुपरिंटेंडेंटके रूपमें परीक्षा दिलाने साथ गया था। रातमें तीन बजे उठता हूँ, तो क्या देखता हूँ कि टट्टीकी बिजली जल रही है, इस वक्त कौन है जो टट्टीमें है। देरतक देखता रहा, पर कोई न निकला। आवाज दी, तो उत्तर नदारद। साहस कर अंदर झाँका, तो क्या देखता हूँ कि मानिकलाल डरे-सहमेसे अंदर तर्कशास्त्र पढ़ रहे हैं।

'तुम्हारी तैयारी बहुत काफी है।' मैंने कहा।

'मुझे तो कुछ भी याद नहीं। क्या होगा?'

'घबराओ नहीं। तुम निश्चय ही पास होओगे।'

समझा-बुझाकर किसी प्रकार उस रात उन्हें उस समय तो सुला दिया। दूसरे दिन परीक्षा हुई। आश्चर्य! महान् आश्चर्य!! मानिकलाल गिरे मुँह निढाल चेहरा और रोनी सूरत बनाये हुए हमारे पास आये और रोकर कहने लगे 'फेल हो गये।'

मैंने कहा, 'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। तुम्हारी बड़ी पक्की तैयारी थी। फेल नहीं हो सकते।'

और जब नतीजा आया, तो वास्तवमें मानिकलाल फेल थे। बादमें मालूम हुआ कि तर्कशास्त्रमें ही वे फेल हुए थे। उनका अपनी शक्तियोंके प्रति संशय ही उन्हें ले डूबा था। विषयका ज्ञान उन्हें काफी था।

फिर तो तीन सालतक निरन्तर वे तर्कशास्त्रमें ही फेल होते रहे और अन्ततः निराश होकर उन्होंने पढ़ना ही छोड़ दिया। संशय ही उनके मानसिक पतनका प्रधान कारण था। इसी शत्रुके कारण वे पतनकी चरम सीमापर पहुँच चुके थे।

यह ठीक है कि कुछ विषय कठिन होते हैं और प्रायः उनमें उत्तीर्ण होनेके लिये बहुत परिश्रम करना पड़ता है। लेकिन इसका यह मतलब बिलकुल नहीं है कि आप अपनी शक्तियोंके प्रति अविश्वासी बन जायँ और संचित शक्तियोंको ही हाथसे निकाल दें। सदा संशय और अविश्वासके मोहजालमें फँसा हुआ व्यक्ति अपने लिये भी कुछ नहीं कर सकता तो दूसरोंके लिये क्या करेगा?

कभी-कभी व्यक्तिमें पूरी शक्तियाँ होती हैं। फिर भी वह संशय ही करता रहता है। हमें अपनी बहिनकी एम्० ए० की परीक्षाकी स्मृति आ रही है। उन्होंने काफी तैयारी की थी। रात-दिन पढ़ती रहती थीं। जब परीक्षा आयी, तो कहने लगीं, मेरी तैयारी पूरी नहीं है। शायद पास भी नहीं होऊँगी। परीक्षामें न जानेके बहाने किये। कहने लगीं, हमें बुखार है। थर्मामीटरसे टेम्परेचर लिया, जो वह न निकला। फिर कहा, पेटमें दर्द है। सर दर्द कर रहा है। हम समझ गये कि संशयवृत्ति ही खराबी कर रही है। वही बात आगे चलकर सच भी निकली।

'तुम केवल परीक्षा-भवनमें चलकर पर्चा ले आना। फीस तो वापस मिलेगी नहीं।'

ताँगा किराये कर उन्हें ले गया। उनका मन धुकपुक कर रहा था। परीक्षा-भवनसे कोई भी परीक्षार्थी आध घंटे पहले नहीं निकल सकता अतः जब वे बैठ गयीं तो लिखना पड़ा। याद बहुत था। आध घंटेमें जो प्रश्न किया, बहुत

ही अच्छा हुआ। साहस आया। कलम तेजीसे चलने लगी। वे तीन घंटे सिर ऊपर उठाये लिखती रहीं! जब परीक्षा-भवनसे बाहर निकलीं, तो उन्हें ऐसा लगा कि पर्चा बहुत संतोषजनक हुआ है।

फिर तो उन्होंने पूरी परीक्षा दी। जब नतीजा आया, तो द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण हुईं। यदि वे संशयको न पछाड़तीं, तो संशय उन्हें तनिक-सी देरमें तोड़-मरोड़कर रख देता। संशयका मायाजाल तोड़नेसे ही सत्यका प्रकाश होता है।

संशय एक प्रकारका अँधेरा है, जो हमारे मन और आत्मापर छा जाता है और कुछ देरके लिये नेत्रोंको झूठे मोहमें बाँध देता है।

कहा है—

'इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि' (यजु० १। ८)

अर्थात् असत्यको त्यागकर जो सत्य विचार, उसीको ग्रहण करना चाहिये। यदि आप हर किसीपर शक या संदेह करते रहते हैं, तो भी संशयके मायाजालमें अटके हुए हैं। हो सकता है कि किसी विशेष व्यक्तिने आपको धोखा दिया हो या आपसे विश्वासघात किया हो, किंतु प्रत्येकको अविश्वासकी दृष्टिसे मत देखिये। संसारको अपना विरोधी मत समझिये।

कुविचारों, जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों, मनके कुसंस्कार और अज्ञानके बन्धनोंसे स्वयं मुक्त हो जाइये और दूसरोंको भी मुक्त कर दीजिये।

'स्वर्गतो धिया दिवम्' (यजुर्वेद) सद्बुद्धिसे ही स्वर्ग प्राप्त होता है। जिसकी बुद्धि शुद्ध नहीं हुई है, उसे सुख-शान्ति नहीं मिल सकती।

जिस प्रकार आप दूसरोंके प्रति संदेह रखते हैं, वैसे ही स्वयं अपने विषयमें संदेह करते रहते हैं। अपने प्रति अविश्वास करना अपनी उत्पादक शक्तियोंको पंगु बना लेना है। इससे जीवन अस्थिर और निश्चय संदिग्ध रहता है। स्मरण रखिये, संशय चाहे किसी भी रूपमें क्यों न हो, मनुष्यका जीवन नष्ट कर देता है।

'संशयात्मा विनश्यति'

मानव-जीवन कर्मक्षेत्र ही है

कर्मक्षेत्रं हि मानुष्यम्। (व्यास०)

मनुष्यका अधिकांश जीवन परिश्रमका जीवन है। जैसे बिना भोजन तथा वायुके जीवन असम्भव है, बिना श्रमके जीवन नीरस और शिथिल है। प्रत्येक मानव-विशेषणसे विभूषित होनेवाले व्यक्तिमें 'परिश्रम' वह दिव्य गुण है जिसके द्वारा वह संसारमें विकसित होता है; अपने शरीर, मस्तिष्क तथा आत्माके गुणोंकी वृद्धि करता है। परिश्रम हर प्रकार, हर स्थिति तथा वर्गके व्यक्तिके लिये एक आवश्यक तत्त्व है।

जब संसारके सब जीव श्रमद्वारा शक्तिका अर्जन कर रहे हैं, तो आप कैसे निष्क्रिय रह सकते हैं? बिना श्रमके भला क्योंकर अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा, सम्मान तथा उत्तरदायित्वकी रक्षा कर सकते हैं?

परिश्रम सर्वश्रेष्ठ शिक्षक है। इसके द्वारा हमारा सम्बन्ध अन्य व्यक्तियों तथा वस्तुओंसे होता है। यदि हम जीवनचरित्रोंका अध्ययन करें, तो हमें विदित होगा कि सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति प्राय: कठिन श्रम करनेके अभ्यस्त रहे हैं, अपने आविष्कारोंमें सतत लगनशील और उत्तरदायित्वोंमें वीर और दृढ़ रहे हैं। संसारमें आप जिन कार्योंसे चमत्कृत होते हैं वे मानवके हाथों या मस्तिष्कके श्रमके अद्भुत चमत्कार हैं। उनमें श्रमका सौन्दर्य और स्थायित्व है। श्रम प्रगतिका चिह्न है।

बफून कहा करते थे, 'प्रतिभाशाली व्यक्तियोंकी प्रतिभाका मूल मन्त्र उनके धैर्यमें है।' वे किसी विरोधसे भी पस्तहिम्मत न होते थे, न थकते ही थे। वे प्रत्येक मिनटका उचित उपयोग करते थे। अपेलीज प्रत्येक दिन कुछ-न-कुछ अवश्य लिखते थे। न्यूटन निरन्तर धैर्य और सतर्कतासे प्रकृतिका निरीक्षण किया करते थे। वाट कहा करते थे, 'हमें यह जानना चाहिये कि किस बातसे काम चलेगा, किससे नहीं।' वास्तवमें जो व्यक्ति धैर्यके साथ निरीक्षण करनेकी

बुद्धि विकसित कर लेता है, वह अच्छा श्रम कर पाता है। वह सत्यता और सही रूपमें प्रत्येक तथ्यको देखता है। एक बार न्यूटनने कहा था कि 'उन्होंने जिस गुणके विकासमें सबसे अधिक ध्यान दिया था, वह यह था कि वे किसी समस्याको अपने मानव-चक्षुओंके सम्मुख बहुत देरतक रख सकते थे और जीवनके अनुभवोंसे उसकी सत्यता मालूम करते रहते थे, यहाँतक कि उन्हें समस्याका हल प्राप्त हो जाता था।'

आपके कार्यमें अनेक विघ्न-बाधाएँ, प्रतिरोध एवं प्रतिकूलताएँ पड़ेंगी, लेकिन ये कठिनाइयाँ वास्तवमें आपकी सहायक शक्तियाँ हैं, जो पग-पगपर आपकी शक्तियोंकी परीक्षा करती हैं और आपको दृढ़तर बनाती हैं। वे आपको अनुभव देती हैं और अध्यवसायी बनाती हैं।

हरकूलीज़ नामक यूनानी वीरका सिर शेरकी खालसे ढका होता था और शेरके पंजे उसके गलेके नीचे चुभते रहते थे, जिसका तात्पर्य यह था कि जब कठिनाइयोंपर विजय प्राप्त हो जाती है, तो वे हमारी सहायक शक्तियाँ बन जाती हैं।

घटनाएँ परिस्थितियोंसे सम्बन्धित रहती हैं। उनका फल हमारे चरित्रपर निर्भर रहता है। आप किसी घटनाके प्रति वैसी प्रतिक्रिया दिखाते हैं, यही कसौटी है। एक प्रतिभाशाली व्यक्तिके लिये असफलता सफलताका सोपान हो सकता है, जब कि एक कमजोर व्यक्तिके लिये वही एक ऐसा खन्दक बन सकता है, जिसमेंसे निकलना असम्भव हो। सब कुछ हमारी इच्छाशक्ति और संकल्पपर निर्भर है। जहाँ चाह है वहाँ राह अवश्य निकल आती है।

जिस वस्तु या जिन-जिन वस्तुओंको आप मूल्यवान् समझते हैं, उसका मूल्य श्रम ही है। श्रमके बिना उसकी प्राप्ति असम्भव थी। महान् पुरुषोंकी सफलताका गुर निरन्तर अनवरत श्रम है। उन्होंने जो कार्य हाथमें पकड़ा, वे लगातार उसीको आगे लेकर बढ़ते रहे हैं। हम यह मानते हैं कि उनमें जन्मजात प्रतिभा, बुद्धि तीव्रता रही होगी, किंतु उनमें जिस गुणका आधिक्य था, वह परिश्रम था। श्रमको सजा मत मानिये, प्रत्युत आशा और उत्साहका सम्मिश्रण कीजिये।

सेन्ट अगस्टाइन कहा करते थे, 'आलस्यमें बिना कुछ किये निष्क्रिय पड़े रहना सबसे कठिन कार्य है। वह व्यक्ति धन्य है जो अपना जीवन और शक्तियाँ

उत्तम कार्योंकी सिद्धिमें लगाता है और अपनी योजनाएँ पर्याप्त सोच-समझकर निर्मित करता है। न केवल बड़ी योजनाओंमें, छोटी तथा मामूली योजनाओंतकमें, श्रमकी अतीव आवश्यकता पड़ती है। आलस्यमें सम्पत्ति अर्जित करनेमें लगे हुए समयसे आधे समयमें ही नष्ट हो जाती है।'

एक संस्कृत कहावतका सार है—'लक्ष्मी उस नर-शिरोमणिके साथ रहती है, जो सर्वाधिक श्रम करता है। वे व्यक्ति दुर्बल हैं, जो भाग्यको ही निर्माण करनेवाली शक्ति माने बैठे हैं।'

इस देशके नवयुवकोंका सबसे बड़ा शत्रु आलस्य है। बेकारोंकी संख्या बढ़ानेवाले कुछ व्यक्ति तो वास्तवमें काम न मिलनेसे परेशान हैं, किंतु अधिकांशमें उनमें ऐसी संख्यावाले अधिक हैं, जो आलसी, बेकार, निठल्ले और मुफ्तमें सब कुछ चाहनेवाले हैं। जो पेशे अधिक परिश्रम चाहते हैं, उनमें वे दिलचस्पी नहीं लेते। उन नौकरियोंकी ओर दौड़ते हैं जिनमें कम मेहनत करनी पड़ती है। काम न करके, वे आलस्यमें अपनी शक्तियोंका और भी क्षय कर रहे हैं। जिन शक्तियोंका उपयोग नहीं किया जाता, वे अन्ततः नष्ट हो जाती हैं। शारीरिक और मानसिक शक्तियोंके प्रति आलस्य-भावना अनर्थकारी है। आलस्यने उन्हें पतित और कमजोर बना दिया है। कुछ दिन तो मनुष्यको आलस्यमें कुछ आकर्षण प्रतीत होता है; किंतु बादमें खाली बैठे ठाले रहना भी दुःसह हो जाता है। आलस्यमें आनन्द मनाने, प्रसन्न रहनेकी शक्ति मारी जाती है। जिस व्यक्तिके जीवनमें सदा छुट्टी ही रहती हो, वह छुट्टीके आनन्दको क्या समझ सकता है। बिस्तरपर पड़े रहनेवालोंने कब क्या किया है? उन्हें अपने सोनेसे ही कब फुरसत मिली है? बड़े-बड़े अवसर निकले चले जाते हैं और वे सोये पड़े रहते हैं। जिसे हम आलस्य कहते हैं, वह हमारी शक्तियोंके पंगु होनेकी एक निशानी है।

आलस्य जीवित व्यक्तिकी समाधिकी तरह है। आलसी व्यक्ति न अपनी उन्नति, सेवा या प्रगति कर सकता है, न समाज, देश अथवा परमेश्वरके ही काम आ सकता है। वह तो चूहे, खटमल या मक्खी-मच्छरोंकी तरह व्यर्थ ही इस सृष्टिके अन्नको नष्ट करता है। जब उसके मरनेका समय आता है, तो वह व्यर्थ जीवन कीट-पतंगों या पशु-पक्षियोंकी तरह नष्ट हो जाता है। ऐसे

लोग जो कुछ करते हैं वह बंजर भूमिकी तरह व्यर्थ है। आलस्य समयकी बरबादी है।

पुराने यूनानी लोग कार्यको एक सामाजिक आवश्यकता समझते थे। सोलन कहते हैं कि 'जो व्यक्ति काम नहीं करता था अथवा उससे जी चुराता था, वह कोर्टके सुपुर्द कर दिया जाता था।' एक दूसरे यूनानीवेत्ताका कथन है कि 'जो व्यक्ति कामसे जी चुराता है, वह चोर-डाकू है।' श्रम करनेवाले व्यक्ति अपराधी नहीं होते। उनकी वृत्तियाँ शुभ कार्योंमें लगती हैं। वे ऊँचाईकी ओर चढ़ते हैं। आलसी व्यक्तिका दिमाग झगड़ोंकी जड़ है। उसमें रह-रहकर शरारत और खुराफातें उठा करती हैं। खाली बेकार बैठकर हम प्रमाद-पापकी ओर प्रवृत्त होते हैं। जो व्यक्ति अपनेको कार्यसे मुक्त समझता है वह दयाका पात्र है, साथ ही सजाका हकदार है। यदि आप अशिक्षित हैं तो थोड़ेसे श्रमसे शिक्षित बन सकते हैं, यदि पिछड़े हुए हैं तो मेहनतसे भागकर आगे निकल सकते हैं, यदि दुर्बल हैं तो सशक्त और साहसी हृष्ट-पुष्ट बन सकते हैं, अपनी सब निर्बलताओंको दूर भगा सकते हैं और प्रतिष्ठाका जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

प्रलोभन आलस्यकी शक्लमें आता है और हमें कर्ममार्गसे च्युत करता है। 'तनिक विश्राम कर लें'—ऐसा विचार मनमें आते ही, वह अपनी शक्तियोंको समेट लेता है। इस 'तनिक' से उसकी शक्तियोंको पूरा काम नहीं मिल पाता। फलतः वह अपनी सृजनात्मक शक्तियाँ खो बैठता है।

अरस्तूने कहा है—'आनन्द एक शक्ति है। दैनिक पर्यवेक्षणसे आपको विदित होगा कि आनन्द और स्वास्थ्यकी आलस्यसे पुरानी शत्रुता है। अनेक व्यक्तियोंके जीवनमें असंख्य अवसर आते हैं, उनकी प्रसन्नताकी प्राप्तिके बहुत-से साधन हो सकते हैं। समयका सदुपयोग कर ये व्यक्ति कहीं-के-कहीं पहुँच सकते हैं। फालतू वक्तमें अपनी गुप्त शक्तियोंको बढ़ाकर ये अपने-आपका आमूल परिवर्तन कर सकते हैं और इन्हीं आलसियोंमें ऐसे अनेक व्यक्ति निकल सकते हैं जो शानदार फल प्राप्त कर सकते हैं, पर शोक! ये अपनी मोह-निद्रामें सोये पड़े रहते हैं। इन सदाके लिये अपने हाथसे भागते हुए मिनटों, घंटों, दिनों और सप्ताहोंको मजबूतीसे नहीं पकड़ते। इन्हें व्यर्थ मत क्षय होने दीजिये वरं अपने कार्यसे स्थायी बनाइये।'

यौवनका समय स्वर्णयुग है। जीवनके ये बहुमूल्य क्षण मनुष्यको किसी विशेष दिशामें मोड़नेके लिये समर्थ हैं। उस समय शक्तियाँ अपने पूरे उभारपर रहती हैं उनसे खूब परिश्रम लिया जा सकता है। प्रौढ़ हो जानेपर ये शक्तियाँ चाँदीकी तरह हैं। चाँदीके जिस प्रकार अनेक उच्च उपयोग हो सकते हैं उसी प्रकार प्रौढ़ जीवनके समयसे भी प्रचुर लाभ उठाया जा सकता है। वृद्धावस्थाका युग शीशेकी तरह है, जिसके उपयोग हैं, पर बड़े नहीं। फिर भी अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार उसका भी कुछ-न-कुछ उपयोग हो ही सकता है।

यदि कार्य करें, लेकिन देरसे झिकाकर दुःख देकर करें, तो क्या लाभ? कार्य तो वही उत्तम है, जो उचित समयपर समयानुकूल ही कर दिया जाय—जब समय निकल गया, तो उसे करनेसे न लाभ हो सकता है न प्रशंसा ही प्राप्त हो सकती है। नियमपूर्वक ठीक समयपर कार्य पूर्ण कर देना परमेश्वरका एक आशीर्वाद है। टालने या देरसे करनेके कारण अनेक बड़े व्यक्तियोंका पतन हुआ है।

कुछ व्यक्तियोंके असफल होनेका कारण क्रम तथा व्यवस्थाकी कमी है। वे काम खूब करते हैं किंतु सब अव्यवस्थित, टूटा-फूटा, बेतरतीब, विशृंखल। जबतक ठीक योजना न बनायी जाय और अपने कार्यको क्रमानुसार पूर्ण न किया जाय, तबतक स्थायी लाभ प्राप्त नहीं होता, प्रत्युत कार्य अधूरा-सा ही रह जाता है।

क्रम तथा सुव्यवस्था सर्वत्र लाभदायक हैं। घर हो या आफिस, दूकान या और कोई अस्पताल, सुव्यवस्था अमित फल देनेवाली है। व्यवस्थित व्यक्ति थोड़ेसे श्रमसे बहुत काम निकाल सकता है, थोड़ी वस्तुओंसे बहुत-सा लाभ प्राप्त कर सकता है तथा रुपया भी बचा सकता है। आपके घर, दूकान या आफिसकी प्रत्येक वस्तुका एक नियत स्थान होना चाहिये। प्रत्येक सदस्य वस्तुको उसी नियत स्थानपर रखे, इधर-उधर न फैलाये। जो वस्तु जहाँसे उठायी जाय वहीं रखी जाय, जो पुस्तक अलमारीके जिस स्थानपर रखी है, वहीं रखी जाय। घरमें आपका चाकू, दियासलाई, लिखने-पढ़नेकी वस्तुएँ, कपड़े, कुर्सी, मेज, कंघा, शीशा इत्यादिका जो स्थान नियत हो चुका है वहीं पहुँचना चाहिये। लिखने-पढ़ने, हिसाब-किताब, ऋण या मिलने-जुलनेमें भी

समय और क्रमका ध्यान रखें। पहले सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य हाथमें लें, फिर कम महत्त्वपूर्ण, फिर अन्य साधारण काम। प्राय: लोग मामूली कामोंको पहले हाथमें ले लेते हैं, जबकि महत्त्वपूर्ण कार्य यों ही पड़े रह जाते हैं।

काममें समयकी पाबंदीका सतर्कतासे ध्यान रखें। बिना समयकी पाबंदीके मनुष्य चिन्तित रहता है तथा कामको पर्वतकी तरह भारी और दुरूह कष्टसाध्य मानता है। नियत समयपर कार्य करनेका गुण सर्वत्र प्रशंसित होता है। ऐसे व्यक्तिपर सब विश्वास करते हैं और जिम्मेदारीके कार्य प्रदान करते हैं।

जीवन एक प्रगति है। यह उन्नति और श्रेष्ठताकी ओर बढ़ना है। हम आशामय प्रयत्नोंसे निरन्तर आगे बढ़ते चलते हैं। प्राय: कठिनाई सत्य-प्राप्तिमें एक गुरुका कार्य करती है। विरोध हमारी गुप्त शक्तियोंको जाग्रत् करता और आगे बढ़नेकी प्रेरणा प्रदान करता है। अधिक कठिनाइयाँ पड़नेपर हमारा आत्म-विश्वास बढ़ता है, विनम्रता आती है और सहिष्णुताकी शक्तियाँ बढ़ जाती हैं।

आपका जीवन बंद पानीकी तरह एक स्थानपर बँधा हुआ सड़ता-गलता नहीं होना चाहिये। यदि आप उसे आगे नहीं बढ़ायेंगे, जीवनमें प्रवाह नहीं लायेंगे, तो वह पीछे (पतन, आलस्य और मृत्यु) की ओर चलने लगेगा। जहाँ आपको कठिनाइयाँ मिलें, उनकी परवा न करते हुए आपको आगे बढ़ जाना चाहिये। सर फिलिप सिडनीका मूल मन्त्र हमें प्रेरणा देनेवाला है—'मैं सफलता और कार्यसिद्धिका मार्ग मालूम कर लूँगा। यदि न मिला, तो स्वयं निर्माण कर लूँगा।' यदि आपको अपना मार्ग नहीं मिलता, तो अपनी मौलिकता, बुद्धि तथा अध्यवसायसे उसे मालूम क्यों नहीं कर लेते?

आराम तथा विलासमें रहनेसे मनुष्य जीवनभर बच्चा ही बना रहता है। कठिनाइयों और विरोधोंमें रहनेसे उसमें पुरुषोचित शक्ति और सामर्थ्यकी वृद्धि होती है।

बड़े बननेवाले व्यक्तियोंके जीवनका अध्ययन करनेसे विदित होता है कि उनमें कुछ अपूर्णताएँ, त्रुटियाँ या प्रकृतिकी ओरसे कुछ कमजोरियाँ थीं। इन कमजोरियोंको दूर करनेकी प्रतिक्रियाने उन्हें ऊँचा उठाकर आसमानतक चढ़ाया था। चरित्रकी दृढ़ता या कमजोरीकी सच्ची परीक्षा तभी होती है, जब बाह्य परिस्थितियोंमें कोई असाधारण परिवर्तन होता है या कोई विरोध उत्पन्न होता

है। विरोधसे मनुष्यको अपनी सब शक्तियोंके सामूहिक बलपर अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा करनी होती है। अनेक छिपी हुई गुप्त शक्तियोंका विकास होता है। कठिनता एक भारी हल है। उसे चलानेके लिये लोहेसे सख्त हाथोंकी आवश्यकता है।

आपका श्रम चाहे शारीरिक हो अथवा मानसिक, आपको चाहिये कि आप पूरी शक्ति और एकाग्रतासे उसमें संलग्न हो जायँ, तन्मयतापूर्वक उसे सम्पन्न करते रहें और जबतक उसे पूरा न कर डालें कदापि न छोड़ें। अपने पसीनेकी आयसे आपको समुन्नत होना चाहिये।

धनकी त्रुटियाँ बताते हुए प्राय: कहा जाता है कि इससे हमारी नैतिकताको धक्का लगता है; सहानुभूति, दया, करुणाका लोप होने लगता है, लेकिन गरीबी इससे भी बुरी है, निन्द्य है। गरीबीसे मनुष्यका साहस और उत्साह मारा जाता है, सच्चा और प्रतिष्ठित होना कठिन हो जाता है। अत: श्रमद्वारा अपनी गरीबीको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

श्रमके साथ विश्राम और निर्दोष मनोरंजनका भी उचित सम्मिश्रण होना अपेक्षित है। आप परिश्रम करें और थकनेपर पर्याप्त विश्राम करें, मनोरंजनद्वारा मनका भार दूर करें, जिससे नया उत्साह और शक्ति प्राप्त हो सके।

अपने कार्यमें निरन्तर संलग्न रहना, मन उचाट न कर उसमें समृद्धिशील बननेका प्रयत्न करते रहना मनुष्यके लिये सबसे स्वस्थ शिक्षा है। जो अपनी शक्तियोंका सुचारु उपयोग श्रममें करता चलता है, वह कठिन कार्योंमें भी सफलता प्राप्त करता जाता है। समृद्धि उसके साथ चलती है।

श्रमशील व्यक्ति तड़के उठता है और अपने कामपर यथासमय जाता है। वह एक सेकंड भी व्यर्थ नष्ट नहीं करता। वह सतर्क और जागरूक बना रहता है, अवसरोंको व्यर्थ नहीं जाने देता। आपने पर्याप्त समझ-बूझकर अपना जो भी कार्यक्रम उद्देश्य या मूल काम निश्चित किया हो, उसमें दृढ़तासे लग जाइये, अपने निश्चयोंके प्रति सच्चे रहिये। ध्यान रखिये कि आलस्य, तन्द्रा, विलास या बीमारीकी केंचुली आपके इर्दगिर्द चिपटी न रह जाय।

सक्रिय जीवन व्यतीत कीजिये

जो शक्ति पृथ्वीको धारण किये हुए है वह क्रियाशीलता है। यदि पृथ्वी अपनी धुरीपर न घूमे तो वह गिर पड़ेगी। इसी प्रकार यदि हम अपनी क्रियाशीलता, परिश्रमशीलता त्याग दें, तो जीवन-संग्राममें अवरोध उत्पन्न हो जायगा। क्रियाशीलता ही हमारे जीवनका सब कुछ है।

रुपयेके परिवर्तनमें हम सब कुछ पा जाते हैं। पर रुपया वास्तवमें क्या है? यह है, हमारा संचित श्रम। श्रमको स्थूलरूप प्रदान कर रुपया, जमीन, जायदाद बना लेते हैं। इसी संचित श्रमसे हम दूसरोंका विभिन्न प्रकारका श्रम खरीदा करते हैं। यदि यह श्रमके विनिमयकी प्रथा रुक जाय, तो संसारका समस्त कार्य रुक सकता है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति अपने शरीर, मन, बुद्धिके अनुसार समाजका कुछ-न-कुछ कार्य करता है। किसीका श्रम शारीरिक है तो किसीका मानसिक रहता है। इसी श्रमके आदान-प्रदानसे समाजका कल्याण होता है।

क्रियाशीलता प्रकृतिमें है। हवा और जलतक बिना क्रिया सड़ने-गलने लगेंगे। चाकूको जितना पड़ा रखेंगे, निष्क्रिय रखेंगे, जंगसे नष्ट हो जायगा। उसीको यदि प्रयोगमें लायेंगे, तो तेज चमकदार और सुन्दर बन जायगा। ऐसा ही मानव-जीवन है। यदि हम अपनी शक्तियोंका सदुपयोग करते रहेंगे, तो मनके दुर्विकार, कूड़ा-करकट, मैल, दुर्गन्ध, सड़न, अव्यवस्था, आलस्य और दारिद्र्य नष्ट हो जायँगे। क्रियाशील रहनेसे हमारी चैतन्यता, जागरूकता, शुचिता और सात्त्विकताकी वृद्धि होती है। मनुष्य अंदर और बाहरसे स्वच्छ एवं प्रसन्न रहता है।

समयरूपी तालेमें परिश्रमरूपी ताली डालनेसे इस पृथ्वीके सब सुख-सम्पत्ति प्राप्त होते हैं। परिश्रमशील व्यक्ति सब कुछ कर सकता है—एक चौपाईका टुकड़ा देखिये—

सकल पदारथ हैं जग माहीं।
कर्महीन नर पावत नाहीं॥

इसमें लेखकने ज्ञान और अनुभवका अखण्ड भण्डार भर दिया है। भगवान्‌ने मनुष्यको संसारमें भेजते समय यह क्रम रखा है कि कर्मनिष्ठा और परिश्रमशीलतासे ही सब सम्पदाएँ प्राप्त हों। विश्व कर्मप्रधान है। जो जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल चखता है। तरह-तरहके फल लोगोंको मिल रहे हैं, किसीकी आरती उतर रही है, जयध्वनि बोली जा रही है यानी प्रतिष्ठा दी जा रही है, प्रशंसा की जा रही है। ये वे व्यक्ति हैं जिन्होंने श्रमद्वारा संसारके समयका उपयोग किया है। श्रमकी पूँजीसे जो चाहे खरीद लीजिये।

लोग अभावग्रस्त क्यों हैं? इसीलिये कि उन्होंने पूरी परिश्रमशीलतासे काम नहीं किया है। पूरी निष्ठा नहीं लगायी है। भगवान् उसीका फल देंगे, जो आपने किया है। उन्होंने श्रमके ऊपर सब व्यवस्था रखी है। वे परम न्यायकारी हैं। वे देखते हैं कि कौन सही-सही परिश्रम कर रहा है। सही परिश्रमकी कसौटीपर ही हमें सांसारिक मान-प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि प्राप्त होती है।

समय और श्रमकी उपयोगिता ही मुख्य है। जो कामसे जी चुराते हैं, वे मरते हैं, गरीब रहते हैं और पग-पगपर अपमानित होते हैं। जो फालतू आलसी निकम्मे शैतान हैं, वे लड़ेंगे, झगड़ेंगे, जुआ खेलेंगे, परेशान करेंगे। ये शैतान आपके दिमागपर अधिकार न कर लें, इसके लिये सावधान रहें। मनके शैतानको काम दीजिये। शारीरिक श्रमकी भी उपेक्षा मत कीजिये। श्रम और सम्पत्तिमें कोई अन्तर नहीं है। किसान पृथ्वीकी छाती चीरकर भोजन उत्पन्न करता है, मल्लाह नदीकी छाती चीरकर चलता है। जय, प्रशंसा, मान-प्रतिष्ठा, रुपया-पैसा, जायदाद—ये सब श्रमके पुरस्कार ही हैं।

महाभारतमें एक स्थानपर कहा गया है कि दोनों भुजाओंका कमाया हुआ अन्न हमारे पेटको मिलना चाहिये, बुद्धिकी कमाई हमारे मनको मिलनी चाहिये। बुद्धिसे लोग अधिक कमाकर प्रायः फालतू अपव्यय करते हैं। शारीरिक श्रमसे कम पैसा मिलता है, लेकिन उसके बिगड़नेकी भी कम गुंजाइश है। बुद्धिकी कमाई धर्म, यज्ञ, दान, पुस्तक-क्रय, ज्ञानवर्द्धनमें व्यय होनी चाहिये। हमारी परम्परा ऐसी रही कि राजा जनकतक हल जोतकर जीविकोपार्जन करते रहे। खेतीका रुपया पसीनेका रुपया है। श्रमका रुपया है। नसीरुद्दीन कुरान लिखकर अपनी जीविका-उपार्जन करता था। उसकी पत्नी उसके लिये भोजनकी व्यवस्था

करती थी। वह टोपी बनाया करता था। बाजारमें किसीके यहाँ रखवा कर साधारण मूल्यपर ही उन्हें बिकवाता था। गाँधी और विनोबा श्रमकी प्रतिष्ठाके ज्वलन्त उदाहरण हैं। उनके यहाँ जलतक मनुष्य खींचते रहे। स्वयं अपना काम करते रहे। व्यक्तिगत आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये स्वयं ही परिश्रम करनेकी जरूरत है।

श्रम मनुष्यकी अभूतपूर्व वस्तु है। श्रमदान-यज्ञ मनुष्यके श्रमकी प्रतिष्ठाका एक जीता-जागता रूप है। कर्म ही मनुष्यको ऊपर उठानेवाला है। भगवान् स्वयं कर्मरत हैं। वे एक क्षणके लिये भी बिना कर्म किये नहीं रहते। यदि वे एक क्षणके लिये कर्म करना बंद कर दें, तो इस सृष्टिका प्रत्येक कार्य रुक जाय। वे निरन्तर कार्यरत हैं। हम भी उनसे शिक्षा लें और अपने-अपने ढंगसे परिश्रम करते रहें। बच्चे, युवक, वृद्ध, नारियाँ सब आयुपर्यन्त कुछ-न-कुछ श्रम कर सकते हैं।

परिश्रम करनेकी मूल वृत्ति किसी-न-किसी विशेष उद्देश्यके लिये प्रयत्न करना है। एक उद्देश्यको रखकर हमें उसकी प्राप्तिके लिये परिश्रम करना उचित है। एक दिशामें प्रयत्न फल शीघ्र देता है। कई बार सामान्य परिश्रम या संयोगसे कोई-कोई बड़ी बात हो जाती है। एकाएक कुछ व्यक्ति अमीर बन जाते हैं या प्रयत्न विफल हो जाते हैं लेकिन यह स्थिति असाधारण है। बिना श्रमके आयी हुई सम्पत्ति स्वयं निकल जाती है, स्थायी लाभ नहीं होता। फालतू पैसा अभिमानका नशा उत्पन्न करता है। कर्मको कर्तव्य समझकर निरन्तर श्रम कीजिये और खिन्नतासे निराश मत रहिये। प्रत्येक क्षण कर्म करते रहनेसे गुप्त शक्तियोंका विकास होता है और जीवन दीर्घ बनता है। जीवनमें जो समयकी पूँजी पड़ी है, उसे निचोड़कर तरह-तरहकी सम्पदाएँ प्राप्त कीजिये।

श्रुति कहती है— जीवन एक संग्राम है। उस जीवनमें वही विजयी होता है, जो सीना तानकर आफतोंका मुकाबिला कर सकता है। आफतोंकी घनघोर घटाओंमें बिजलीकी तरह मुस्करा सकता है, परिस्थितियोंका दास न बनकर उनका दृढ़निश्चयी स्वामी बनता है। जो हट जाना पसंद करता है, पर झुकना नहीं।

अक्षय यौवनका आनन्द लीजिये

क्रियाशीलता यौवन स्थिर रखती है

विकासवादी सिद्धान्त है कि पहले मनुष्य एक जंगली जीव था। सभ्यताके उष:कालमें जब अन्य वन्य पशुओंकी भाँति वह उन्मुक्त विचरण करता रहा; घूमना, फिरना, तेजीसे भागकर अपनी उदरपूर्तिके हेतु आखेट करना, तैरना, कूदना-फाँदना—जब उसके दैनिक क्रम रहे, यौवन और जीवन आनन्द प्राप्त करता रहा।

सभ्यताका विकास हुआ या यों कहिये मनुष्य धीरे-धीरे कृत्रिमताके बन्धनमें बँधने लगा, उसका दूर-दूरतक घूमना, फिरना, तैरना, खेलना, कूदना कम होने लगा। वह भोजनोंको भी पकाने लगा; जिह्वाके स्वादमें फँस गया। प्राकृतिक आहारके स्थानपर नाना प्रकारके कृत्रिम भोजनोंका आविष्कार किया गया।

मनुष्यका जीवन आलसी बन गया। प्रकृति श्रमकी पुजारिन है। वह उन्हीं पशु-पक्षियों, जलचर, नभचर इत्यादिको विकसित करती है, जो लगातार परिश्रम करनेके अभ्यस्त हैं। जो जितना ही क्रियाशील है, उतना ही स्वस्थ और सुडौल है। हरिण चौकड़ी भरता है, नील गाय तेज दौड़ती है, अश्व जीवनपर्यन्त जीवनकी दौड़ दौड़ता रहता है; पक्षी निरन्तर व्यायाम करते हैं, बिना पंखोंका उपयोग किये, उन्हें भोजन भी प्राप्त नहीं होता, मछलियाँ निरन्तर तैरती रहती हैं, जंगलके जितने भी जानवर हैं, क्रियाशील रहकर ही जीवनके नाना उपादान एकत्रित करते हैं। गाय, भैंसें, बकरी, भेड़ दिनभर घूम-घूमकर घास खाते हैं। यह क्रियाशीलता ही उनके स्वास्थ्यका मूल है। न उन्हें कब्जकी शिकायत होती है, न कड़वी दवाइयाँ भक्षण करनी पड़ती हैं।

आलस्यके दुष्परिणाम

आजकलके युवक या युवतीका शरीर देखिये—पिचका हुआ मुख, धँसे हुए कपोल, नेत्रोंके चारों ओर कालिमा, पतले-दुबले हाथ-पाँव, न शरीरमें शक्ति, न मनमें स्फूर्ति। क्या कारण है कि हाथ-पाँव दुबले हैं, क्या कारण है कि सिर, कमर और जोड़ोंमें दर्द रहता है या पेट फूलता चला आ रहा है? कारण है परिश्रमका अभाव। जिन अंगोंसे मेहनत नहीं ली गयी, वे निर्बल ही रहेंगे। शक्ति उन्हीं अंगोंमें आती है, जिनसे यथेष्ट श्रम किया जाता है। शरीरसे खूब कार्य लीजिये, देखिये कितनी तीव्रतासे वह दृढ़ होता है; बाँहें मोटी होने लगती हैं, पिचके हुए कपोल पुनः गुलाबी आभासे परिपूर्ण हो जाते हैं, सिरदर्द जाता रहता है।

ग्रामीण मजदूरोंको देखिये, उनके पुट्ठों, आकार, स्वास्थ्यको देखिये और उनके रहस्य क्रियाशीलतापर गौर कीजिये। ग्रामीण स्त्रियाँ बड़े तड़केसे ही चक्की पीसना प्रारम्भ कर देती हैं, उसीके साथ मधुर संगीतकी तान छेड़ देती हैं। कसरत और संगीत—यौवन छलछला उठता है।

आज युवकोंके शरीरोंमें जंग लग गया है। उनकी आदतें आलसी हैं। वे चलना-फिरना या शारीरिक कार्य करना नहीं चाहते। थोड़ी-थोड़ी दूरके निमित्त साइकिल या मोटर बसका आश्रय देखते हैं; खेलने-कूदनेमें उनकी रुचि नहीं है। अपना काम अपने हाथसे करनेमें लज्जाका बोध होता है। पैदल चलनेमें शर्म आती है। पाँवोंसे काम लेना छोड़नेके कारण शरीरकी रही-सही स्फूर्ति भी विलीन हो गयी है।

मेरा वश चले तो साइकिल नामके इस आलसी बनानेवाले यन्त्रको तोड़-फोड़ दूँ। संसारसे इसका बहिष्कार करा दूँ। इन कृत्रिम पाँवोंने हमारे वास्तविक पाँवोंकी शक्तिका शोषण कर दिया है। हमें आलसी बना दिया है। हमारे स्वास्थ्यका दिवाला निकालनेमें इस सवारीका प्रमुख हाथ है। साइकिल-सवारीका कुप्रभाव गुप्त अंगोंपर भी पड़ता है और घृणित रोगोंमें प्रकट होता है।

शारीरिक श्रम किया करें

यौवनके इच्छुकको चाहिये कि यथाशक्ति श्रम करे। चलने-फिरनेके कार्य पाँवोंसे करे। साइकिल तथा इक्कोंसे दूर रहे। यदि आपका दफ्तर दो मील दूर है तो आने-जानेका कार्य पाँवोंसे लीजिये। बाजारसे नाना प्रकारकी वस्तुएँ पैदल ही खरीदने जाना चाहिये। स्कूल पैदल चलें। प्रकृति चाहती है कि दिनभर आप काफी चलें; बैठे न रहें।

जल जब एक ही स्थानपर स्थिर रहता है, तो गंदा हो जाता है। वही जल जब लहरोंके रूपमें बहने लगता है, तो मल पदार्थोंसे स्वच्छ हो जाता है। चलने-फिरने, क्रियाशील रहनेसे यौवन स्थिर रहता है। प्राकृतिक प्रणालीमें शरीरकी सफाई, पुनःनिर्माण और विकासके लिये क्रियाशीलता एक आवश्यक तत्त्व है।

फौजमें रहनेवालोंको नियमित रूपसे चार-पाँच घंटे ड्रिल करायी जाती है। कदम मिलाकर चलना, भागना, दौड़ना, कूदना उनके जीवनके साथ ला दिया जाता है। फलतः वे दीर्घजीवी और परिपुष्ट होते हैं। सीधे खड़े होने, रीढ़को सीधा रखने, गहरी साँस लेनेसे, व्यायाम तथा कसरतसे यौवन स्थिर रहता है।

एक स्थानपर टिककर घंटों बैठे रहना, गद्दीपर मोटे तकियोंके सहारे लेटे रहना, स्वयं अपने हाथ-पाँवसे काम न कर दूसरोंकी बाट देखना, थोड़ी-थोड़ी दूरके लिये साइकिल, बस, रिक्शा या ताँगेका प्रयोग, टहलने न जाना, व्यायाम न करना, शारीरिक श्रमसे जी चुराना बुढ़ापेको आमन्त्रित करनेकी आदतें हैं। इनसे मनुष्यका विकास अवरुद्ध हो जाता है।

इसके विपरीत नित्य समयपर टहलने जाना जीवनको बढ़ा लेना है। टहलना अपने-आपमें हलका व्यायाम है। श्रीभुवनेश्वरनाथ माधव लिखते हैं—'जो खुली हवामें टहलता है, उसे अस्पतालोंकी धूल फाँकनी नहीं पड़ती; न डॉक्टरोंके पीछे-पीछे समयका खून करना पड़ता है। टहलनेवालेका विश्वास है कि शरीर, मन, प्राण और आत्माको चिर सुन्दर, चिर युवा, चिर उल्लासमय रखनेके लिये टहलना यथेष्ट है, उसके विचारमें डॉक्टर शत्रु और दवा जहर है। वह इन दोनोंसे बचेगा, उसे इनकी आवश्यकता न होगी। वह प्रकृति माताका स्तनपान करनेवाला भला अपने गलेके नीचे टिकिया या मिक्श्चरके जहरको

क्यों उतारेगा? वह जानता है उसके शरीरके लिये जितना कुछ आवश्यक है, प्रकृति देती है। प्रायः लोग उपवासके समय मुर्देके समान पड़ जाते हैं। उपवाससे पूरा-पूरा लाभ उठानेके लिये टहलना नितान्त आवश्यक है। मीठी नींद आती है, टहलनेवालेको ही। वह शिशुकी तरह सोता है और सिपाहीकी तरह जागता है—बिलकुल तरो ताजा।'

जो लोग तैर सकते हैं, वे तैरकर व्यायाम करें। जो सूर्य-नमस्कारका आनन्द उठा लेते हैं, वे सब प्रकारकी निराशा, विषाद, पीड़ा, दुःख और ग्लानिसे मुक्त रहते हैं। यदि आप कोई बड़ा व्यायाम नहीं करते, तो टहलने और मालिशको तो अपना ही लीजिये। ब्राह्ममुहूर्तमें टहलना, संगीत, स्नान, पूजा, व्यायाम इत्यादि ऐसे पवित्र कर्म हैं, जिनसे आपके शरीर, मन, प्राण और आत्मा सुखी-समृद्ध हो सकते हैं। आपका शरीर स्वस्थ, मन प्रसन्न, हृदय उदार और आत्मा तेजोमय हो सकती है। इन्द्रियोंके विकारोंसे शान्ति मिल सकती है और यौवन स्थिर रह सकता है। यदि आप हाथ-पाँव न हिलाना रईसी आदत समझते हैं तो प्रकृति आपको ऐसी सजा देगी जिससे आपके शरीरकी क्रियाशीलता पंगु हो जायगी।

चलते रहो!

निरन्तर तीव्र गतिसे प्रवाहित सरिताओंका जल जीवनयुक्त होता है, इसके विपरीत जिस जलमें प्रवाह नहीं है, जो एक स्थानपर रुक गया है, वह सड़कर दुर्गन्धिमय हो उठता है। इस सड़े हुए स्थिर जलमें भी ज्यों ही प्रवाहकी गति आती है, त्यों ही इसमें नव जीवनका प्रादुर्भाव हो उठता है। गति ही जीवन है, स्थिरता मृत्युका पर्याय है।

प्रकृतिमें देखिये, अनन्त आकाशका भ्रमण करता हुआ सूर्य प्रातःसे अपना गतिमान् जीवन प्रारम्भ करता है और अपरिमित लोकोंको द्युतिमान् करता हुआ सम्पूर्ण दिन गतिशील रहकर रात्रिमें विश्राम ग्रहण करता है ! उसकी इस यात्राका प्रतिपल प्रतिक्षण गतिसे परिपूर्ण रहता है। निरन्तर गतिशील रहनेके कारण ही कदाचित् उसके द्वारा विश्वके जीव-जगत्का इतना भला होता है। सूर्य भगवान्का एक दिनका विश्राम जीव-जन्तु जगत्के लिये मृत्युका संदेश बन सकता है।

प्रकृतिके जीव-जन्तु-पक्षी जगत्को देखें, तो आपको स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि जो जीव गतिमान् रहते हैं, वे स्वास्थ्य, सौन्दर्य और दीर्घजीवनका आनन्द प्राप्त करते हैं। निरन्तर यत्र-तत्र उड़नेवाले विभिन्न पक्षी, जंगलोंमें इधर-उधर दौड़नेवाले हिरण, गतिमान् जीवन व्यतीत करनेवाली गायें, बकरियाँ, भेड़ें, घोड़े, वृक्षोंपर उछल-कूदका जीवन व्यतीत करनेवाले बंदर, जलमें निरन्तर गतिशील मछलियाँ, कछुवे, मगर इत्यादि बड़ा स्वस्थ जीवन व्यतीत करते हैं। इसके विपरीत आलस्यमें जड जीवोंकी तरह स्थिर पड़े रहनेवाले जीव पंगु, अल्पायु और अस्वस्थ रहते हैं। निष्क्रिय जीवन व्यतीत करनेवाले जीव जल्दी मृत्युको प्राप्त होते हैं। उनके अवयव शैथिल्यमें पड़े रहनेके कारण अपना कार्य यथोचित रीतिसे पूर्ण नहीं कर पाते।

प्राणिशास्त्र हमें सिखाता है कि जो अपनी शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक शक्तियोंका निरन्तर उपयोग करता है, उस गतिके कारण उनकी

ये शक्तियाँ तथा निरन्तर सक्रिय रहनेवाले अवयव पुष्ट होकर सुन्दर बन जाते हैं। काम न करनेवाले अवयव सूखकर विनष्ट हो जाते हैं। निरन्तर कार्यसे हमारा शरीर पुष्ट होकर आत्माकी ऊँचाई प्राप्त करता है।

लेखकको अपनी माताजीका उदाहरण गतिमान् जीवनका जाग्रत् उदाहरण है। वे बड़े तड़के पाँच बजे गृहस्थके नाना कार्योंमें दत्तचित्त हो संलग्न हो जाती हैं। ठण्ड हो या गरमी, वे शौचादिसे निवृत्त होकर स्नान, ध्यान, पूजन, गीतापाठके अतिरिक्त गृहस्थके सभी कार्य ऐसे करती हैं मानो किसी मशीनके द्वारा किये जा रहे हों। भैंस दुहनेका कार्य हो या वस्त्र धोनेका, पाकशालाके कार्य हों या सीने-पिरोनेके, वे निरन्तर चलते रहते हैं। समस्त दिन कार्यसे थककर वे रात्रिमें मीठी नींद सोती हैं। उन्हें पता नहीं रहता कि कहाँ सो रही हैं। भोजन कम-से-कम, वस्त्र सबसे थोड़े, किंतु कार्य सबसे अधिक। उनसे कोई उनके उत्तम स्वास्थ्यका रहस्य पूछे, तो वे उसे एक ही वाक्यमें कहेंगी, **'जो फिरैगो, सो चरैगो, बँधो भूखौ मरैगौ।'** अर्थात् जो चल-फिरकर गतिशील जीवन व्यतीत करेगा, उसे खुलकर भूख लगेगी, जो एक स्थानपर बँधा रहकर गतिविहीन जीवन व्यतीत करेगा, उसकी निष्क्रियता उसे मार डालेगी। इस उक्तिसे उनके स्वस्थ-जीवनका पूर्ण मर्म खिंचकर आ जाता है। ये गतिको ही जीवनका प्रधान लक्षण मानती हैं।

आधुनिक मानवके गिरे हुए स्वास्थ्य, कुरूपता, अल्पायुका प्रधान कारण स्थिर गतिविहीन जीवन है। उसे थोड़ी-थोड़ी दूरके लिये सवारी चाहिये। बस-ट्रामने उससे यात्राका आनन्द छीन लिया है, साइकिल आधुनिक मानवका शत्रु है; क्योंकि इसने आधुनिक युवकके पैर जर्जरित पंगु शक्तिविहीन कर दिये हैं। वह साइकिलका ऐसा क्रीतदास हो गया है कि उसे थोड़ा भी चलना नहीं पड़ता। पाँवोंका समुचित उपयोग न करनेके कारण उसकी जीवनशक्तिका ह्रास हो गया है।

हम यह जानते हैं कि कुछ शौकीन लोग टहलने जाते हैं। बड़ी आबादियोंमें ऐसे व्यक्ति दस प्रतिशतसे अधिक नहीं हैं जो टहलनेके अभ्यस्त

हैं। चाहे आप कोई व्यायाम करें अथवा नहीं, किंतु टहलनेका लोकप्रिय व्यायाम अवश्य करें। यदि नहीं तो आजसे ही साइकिलका प्रयोग छोड़कर इधर-उधर जानेके लिये पैरोंका ही प्रयोग किया करें।

'चलते रहो' का तात्पर्य विस्तृत है। इसका एक अर्थ यह भी है कि कुछ-न-कुछ कार्य करते रहो, आलस्यमें निष्क्रिय जीवन व्यतीत न करो। एक कार्यके पश्चात् दूसरा कोई नवीन कार्य प्रारम्भ करो। मानसिक कार्यके पश्चात् शारीरिक, शारीरिक श्रमके पश्चात् मानसिक कार्य—यह क्रम रखनेसे मनुष्य निरन्तर कार्यशीलताका जीवन व्यतीत कर सकता है।

आलस्य शत्रु है, सक्रियता जीवन-जागृतिका लक्षण है। श्रम ही मनुष्यकी सर्वोत्कृष्ट पूँजी है। आलसी व्यक्ति परिवार तथा समाजका शत्रु है। वह दूसरोंके संचित श्रमपर निर्वाह करता है। ऐसे व्यक्तिसे प्रत्येक परिवारको बचना चाहिये।

परिवारोंमें जितने व्यक्ति हों, सभी सक्रिय रहें, अपना-अपना कार्य जागरूकतासे सम्पन्न करें। मुखियाका कर्तव्य है कि वह बच्चोंमें प्रारम्भसे ही कार्य करनेकी आदतोंका विकास करे। बच्चोंमें आलस्य उनके भावी जीवनके लिये बड़ा हानिकर है।

निरन्तर कार्य करनेसे वासनाएँ नियन्त्रित रहती हैं। थक जानेसे मनुष्यका मन घृणास्पद कृत्योंसे बच जाता है। उसकी प्रवृत्तियाँ शुभ कार्योंकी ओर अधिक लगती हैं। कार्यशीलता चरित्रको चमकाकर द्युतिमान् कर देती है और स्वास्थ्यको सौन्दर्यसे परिपूर्ण कर देती है।

गतिशील जीवनका समग्र ज्ञान-विज्ञान एवं मर्म ऐतरेय ब्राह्मणके एक गीतमें बड़ी सुन्दरतासे व्यक्त किया गया है। इस गीतमें भगवान् इन्द्रने हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहितको सक्रिय जीवन व्यतीत करनेका उपदेश इस प्रकार किया है:—

हे रोहित! श्रमसे जो नहीं थका, ऐसे पुरुषको श्री नहीं मिलती। बैठे हुए आदमीको पाप धर दबाता है। इन्द्र उसीका मित्र है, जो बराबर चलता है। इसलिये चलते रहो!

जो पुरुष चलता है, उसकी जाँघोंमें फूल फूलते हैं। उसकी आत्मा भूषित होकर फल प्राप्त करती है। चलनेवालेसे पाप थक कर सोये रहते हैं।

इसलिये चलते रहो, चलते रहो!

बैठे हुएका सौभाग्य बैठा रहता है, खड़े होनेवालेका सौभाग्य सोता रहता है और उठकर चलनेवालेका सौभाग्य चल पड़ता है। इसलिये चलते रहो, चलते रहो!

सोनेवालेका नाम कलि है, अँगड़ाई लेनेवाला द्वापर है। उठकर खड़ा होनेवाला त्रेता है और चलनेवाला कृतयुगी होता है। इसलिये चलते रहो, चलते रहो!

चलता हुआ मनुष्य ही मधु पाता है। चलता हुआ ही स्वादिष्ट फल चखता है। सूर्यका परिश्रम देखो, जो नित्य चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता। इसलिये चलते रहो, चलते रहो!

व्यस्त रहा कीजिये

विन्स्टन चर्चिल दिन-रातके चौबीस घंटोंमें १८ घंटे परिश्रम करनेके आदी रहे हैं। उनसे जब पूछा गया कि क्या चिन्ताने कभी उनपर आक्रमण किया है, तो उन्होंने उत्तर दिया 'मेरे पास इतना काम है कि चिन्ता करनेके लिये समय ही नहीं मिल पाता।' चिन्ता फालतू आलसी निष्क्रिय मनका एक विकार है। कमजोर तबीयतके व्यक्ति जब खाली होते हैं, तो बजाय उन्नत पहलू देखनेके, वे अपने विरोध, भय, दुःख, क्लेशकी बातें सोचा करते हैं। जिनके पास पर्याप्त कार्य है, उन्हें चिन्ता-जैसे विलासके लिये कहाँ अवकाश है?

प्रसिद्ध वैज्ञानिक लुई पाश्चरने कहा है कि 'शान्ति दो ही स्थानोंपर रह सकती है, पुस्तकालयमें अथवा वैज्ञानिक प्रयोगशालामें।' इन दोनों स्थानोंमें क्यों शान्तिकी कल्पना की गयी है? कारण, इन दोनोंमें कार्य करनेवाले व्यक्ति अपनी पुस्तकों तथा अनुसंधानोंमें इतने निमग्न रहते हैं कि उनके पास चिन्ता करनेके लिये अवकाश ही नहीं रहता। अनुसंधानमें रत व्यक्तियोंको स्नायविक दौरे नहीं पड़ते। चिन्ता-जैसी व्यर्थ सारहीन चीजके लिये उनके पास समय नहीं बचता।

यह बात मनोविज्ञानकी दृष्टिसे ठीक है। चाहे किसीका मस्तिष्क कितना ही तेज, बुद्धि कितनी ही कुशाग्र क्यों न हो, दिमाग एक समयमें एक ही बातपर केन्द्रित हो सकता है। जब आप अपने कार्यमें सूईकी तरह गड़ जाते हैं, तो फिर मनकी शक्तियोंको चिन्ताके विषयोंपर सोचने-विचारनेका अवसर ही प्राप्त नहीं होता। काममें तन्मय हो जाना, रुचि और उत्साहसे उसे पूर्ण करनेका प्रयत्न करना चिन्तासे बचनेका श्रेष्ठ उपाय है।

जौन कूपर पौब्स अपनी पुस्तक 'अप्रियको कैसे भूलें?' में लिखते हैं—'जब मनुष्यका मन किसी रुचि-अनुकूल कार्यमें तन्मयतासे लग जाता है, तो उसे एक प्रकारका आराम देनेवाला संरक्षण, एक आन्तरिक शान्ति, एक

आनन्ददायक विस्मृतिका अनुभव होता है। उसके चिन्तावाले तनावका भी बन्धन टूट जाता है।'

ओसा जौन्सन कहा करते थे, 'मुझे संसारकी इस कर्मस्थलीमें कार्यमें निमग्न हो जाना चाहिये, अन्यथा मैं निराशा तथा चिन्तामें घुल जाऊँगा।'

बात ठीक भी है। यदि हम-आप किसी कार्यमें अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंको व्यस्त न रखें, यदि हम बैठकर गड़े मुर्दे उखाड़ने लगें, दुःखद प्रसंगोंका स्मरण कर रोते रहें, तो हमारा जीना ही दुष्कर हो जायगा।

बर्नाड शाने सही कहा है, 'दुःखी रहनेका सीधा मार्ग यह है कि आप इस चिन्तामें पड़ जायँ कि मैं प्रसन्न हूँ या दुःखी?' अतः अहितकर चिन्तनके लिये मनको ढीला छोड़ देना ही मूर्खता है। आइये, फालतू बैठनेके स्थानपर किसी कार्यमें व्यस्त हो जायँ—अपना कमरा ही साफ कर लें; रूमाल ही धो डालें; बाजारसे सब्जी ले आयें या अपने जूतेपर पालिश ही कर लें। कार्य चाहिये। जहाँ आप किसी कार्यमें लिप्त हुए कि चिन्ता भागी। यह सबसे सस्ती दवाई है जिससे चिन्ताकी पुरानी शत्रुता है। चिन्तासे बचनेके लिये कार्य—पढ़ाई-लिखाई, घरेलू काम, बच्चोंसे खेल-कूद, गायन या बागवानीमें लगे रहें।

छोटी-छोटी बातोंके लिये चिन्तित न रहें

कुछ व्यक्तियोंकी यह आदत होती है कि वे आनेवाले भयको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर तिलका ताड़ बनाकर देखते हैं। २४ शताब्दी पूर्व पेरेक्लीजने कहा था, 'सज्जनो ! हमारी बड़ी मानसिक कमजोरी यह है कि हम बैठकर छोटी-छोटी-सी बातोंकी चिन्तामें समय नष्ट कर देते हैं।' वास्तवमें यदि हम अपनी चिन्ताओंको उनके ठीक रूपमें देखें, तो हमें विदित होगा कि दर-असल ये छोटी-छोटी चीजें हैं जो हमें परेशान करती रहती हैं।

डिजराहलीने कहा है, 'जीवन ऐसी छोटी-छोटी बातोंमें चिन्तित रहनेके लिये नहीं है। जीवन महान् है। वह साधारण बातोंमें विनष्ट होनेके लिये कदापि नहीं बना है।' ऐण्ड्र-मौरिसने उक्त शब्दोंके महत्त्वका निर्देश करते हुए लिखा है कि 'इन शब्दोंने मुझे जीवनके अनेक कारुणिक और चिन्तनीय स्थलोंमें सहायता की है।' अनेक बार हम गहराईसे सोचनेके कारण या दूर दृष्टिके

अभावमें ऐसी बातोंकी चिन्तामें फँस जाते हैं; जिन्हें हम भूलना चाहते हैं और जिनसे हम घृणा करते हैं। ऐसी चिन्ताएँ हमारे जीवनमें अकारण ही एक यन्त्रणा पैदा कर देती हैं। हमारी ये छोटी-छोटी बातें कालके प्रवाहमें स्वयं विलुप्त हो जायँगी। हम क्यों जीवनके बहुमूल्य क्षण छोटे-छोटे चिन्ता उत्पन्न करनेवाले कार्योंकी बातें सोच-सोचकर बरबाद करें? समय स्वयं इन्हें अपने अंदर आत्मसात् कर लेगा। अधिक ऊँचे प्रश्न, उच्च स्तरकी जीवनसम्बन्धी समस्याओंमें ही हमें संलग्न रहना उचित है।

कल्पित भय व्यर्थ हैं

बच्चा अनेक अनहोनी घटनाओं, अजीब प्रकारसे आनेवाले फल, कष्टदायक चीजोंकी बाबत सोचकर चिन्तित रहा करता है। बिजली मेरे ऊपर न गिर जाय? मैं नदी या तालाबमें न डूब जाऊँ? मुझे सिंह न खा डाले? यदि मुझे अकेले छोड़कर पिताजी चले जायँ तो क्या हो? कहीं मैं मर न जाऊँ? ये सब कल्पित भय निरन्तर बच्चेके मनःक्षेत्रमें उदित होते रहते हैं। बच्चे इन मिथ्या भयोंमें अज्ञानवश फँसे रहते हैं।

ऐसे ही अनेक मनुष्योंके मिथ्या भय और चिन्ताएँ होती हैं। उनके भय, निराशा, शंका, चिन्ता आदि कल्पित बन्धनोंपर आधारित होती हैं। वे इन थोथे बन्धनोंमें बँधे रहते हैं। अपने आनेवाले लाभों और उन्नतिके स्थानपर ये लोग मनकी व्यथा, पीड़ा, रोग, कष्ट, भय आदिके बाबत सोचा करते हैं। निन्यानबे प्रतिशत भय ऐसे हैं, जो आगे आते ही नहीं। यदि हम अपने इन कल्पित शत्रुओंको पराजित कर दें, तो सुव्यवस्थित जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

ईश्वरकी इस सर्वांगपूर्ण सुन्दर सृष्टिमें नष्ट होनेवाली चीज नहीं है। वह पूर्णतासे भरी है। जेनरल जार्ज क्रुक लिखते हैं, 'मेरा सब दुःख, चिन्ताएँ वास्तविक स्थितिसे उत्पन्न न होकर कल्पित भयोंसे उत्पन्न हुए।' इसीलिये शेक्सपीयरने कहा है कि 'कायर आदमी मौतसे पहले कई बार मर चुके होते हैं—इसी खयालसे कि मौत अब आयी—अब आयी और बहादुर आदमी तो एक बार ही मरता है जबकि साक्षात् मृत्यु ही उसे घेर लेती है।'

यदि वास्तवमें आपको किसी बातकी चिन्ता है, तो औसतन उनमेंसे अनेक बातें कभी न घटेंगी, केवल मनमें उनका भारमात्र बना रहेगा। सम्भव है, ये बातें औसतके नियमोंके अनुसार न आयें, जिनसे आप व्यर्थ ही मन-ही-मन परेशान हो रहे हैं।

अनिवारणीयसे संतुष्ट रहनेका प्रयत्न कीजिये

जो होना है, वह होकर रहेगा। यदि भवितव्यता निश्चित है, यदि आनेवाली दुर्घटना, दु:खभरे अवसर आनेवाले ही हैं, उनसे नहीं बचा जा सकता, तो उनसे मेल कर लेना ही ठीक है। मेल करनेसे तात्पर्य यह है कि आप अपने-आपको उसी स्थितिमें समझ लीजिये। जिन बातोंको आप अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंके बावजूद बदल नहीं सकते और जो आपके हाथकी बात नहीं हैं, उनके विषयमें चिन्तित होनेसे क्या लाभ? चिन्तित होकर तो जो रहा-सहा है, उसका भी आनन्द न आयेगा।

ईसा महान्‌का नैतिक साहस इतिहासके पन्नोंपर स्वर्ण अक्षरोंसे लिखा रहेगा। मानवताने उनके साथ जो व्यवहार किया वह पाशविक था; किंतु उन्होंने बड़ी मन:शान्तिसे उसे सहन किया। सुकरातके सामने मृत्यु-दण्डके फलस्वरूप जब विषका प्याला लाया गया, जेलरने विषका प्याला उसे पीनेके लिये देते हुए कहा, 'जो कुछ होनेवाला है, उसे निश्चिन्त होकर वहन करो।' सुकरातने निश्चिन्ततासे प्याला पी लिया और शान्तिसे निर्भयतापूर्वक मृत्यु प्राप्त की। वह जिसे बदल न सका, उसे शान्तिसे सहन किया।

जो होना है, उसे होने दीजिये। प्रयत्नोंद्वारा स्थितिको सुधारनेका प्रयत्न कीजिये! चिन्ता करनेसे कोई लाभ नहीं। चिन्ता दूर करनेके लिये इस प्रार्थनाके मर्मको समझिये—

'हे परमेश्वर! हमें मन:शान्ति दीजिये।
जिन घटनाओंपर हमारा वश नहीं, उन्हें सहन करनेकी शक्ति दीजिये।
जिन बातोंको हम बदल सकते हैं, उन्हें बदलनेका साहस दीजिये।'
जो घटनाएँ हो चुकी हैं; जो वर्ष, दिन या घंटे हमारे हाथसे छूटे हुए तीरकी

भाँति अब हमारे वशकी बात नहीं रहे हैं, उनपर हमारा क्या अधिकार हो सकता है? हम उन्हें किस प्रकार वापस ला सकते हैं? किसी भी प्रकार नहीं। यह मुमकिन नहीं कि उन दिनोंमें हम दुबारा जी सकें, जिनमें हम एक बार जी चुके हैं। जो घटनाएँ व्यतीत हो चुकी हैं, हम उन्हें दूर नहीं कर सकते। हाँ, उनके प्रभावोंको थोड़ा-बहुत सुधार अवश्य सकते हैं।

परमेश्वरकी आनन्दमयी सृष्टिमें पुराने अनुभवोंसे केवल एक ही लाभ सम्भव है। पुराने अनुभवोंका विश्लेषण कर हम अपनी वे गलतियाँ मालूम कर सकते हैं, जिनके कारण हमें हानि उठानी पड़ी हैं। इन गलतियोंसे लाभ उठाकर उन्हें विस्मृतिके गर्भमें विलीन कर देनेमें ही बुद्धिमत्ता है।

मानसिक संतुलन धारण कीजिये

मनुष्यका अन्तर्जगत् सब जीवोंसे उच्चतर है। उसकी व्यवस्था जगन्नियन्ताकी अद्भुत कुशलताकी द्योतक है। मकड़ीके जालेके सदृश नाना स्मृतियों, इच्छाओं, कल्पनाओं तथा विचारोंके सूक्ष्म तन्तुओंका तानाबाना उसमें फैला रहता है, जिनका सामूहिक प्रभाव मानव-शरीरपर दृष्टिगोचर होता है। प्राय: मनुष्य विचित्र-विचित्र कार्य करते देखे जाते हैं, किंतु वे अपनी विभिन्न क्रियाओंके मूल केन्द्र—अन्तर्जगत्से अपरिचित होते हैं। उन्हें विदित नहीं कि उनके सब सांसारिक या आध्यात्मिक कार्योंका आदि-स्रोत उनका मन है। बाह्य संसारका सुख-दु:ख, आह्लाद अथवा क्लेशमयी मन:स्थिति, भलाई-बुराईकी ओर प्रवृत्ति, विक्षिप्तावस्था अथवा मनोमोहिनी मुद्रा हमारे उन संस्कारोंके परिणाम हैं, जिनको हमने अपने अन्तर्जगत्में उपजाया है। संसारमें जो व्यक्ति दु:खी रहता है या जो बहुत अल्प साधनोंमें ही आनन्द लूटता है, इसका कारण उस व्यक्तिका मन ही है। अपने अन्तर्जगत्की प्रतिच्छाया ही हम इस लोकमें, व्यक्ति-व्यक्तिमें प्रतिफलित देखते हैं। हमारे संस्कारोंकी छाप हमारी दृष्टिमें निहित रहती है। अपने संस्कारोंके अनुसार ही इस सर्वगुणसम्पन्न सृष्टिसे हम पाप-पुण्य, भलाई-बुराई, आनन्द-क्लेश खींचते रहते हैं।

शरीरपर मनका अद्भुत प्रभाव देखा जाता है। जो रोग वास्तवमें शरीरमें नहीं हैं, उनकी कल्पना करने तथा वैसे ही रोगी-विचारोंको अन्तर्जगत्में स्थान देनेसे वे रोग-व्याधि शरीरमें प्रकट होते देखे जाते हैं। अपने संस्कारोंके अनुसार ही हम स्वास्थ्य, यौवन, सौन्दर्य आसपासके वातावरणसे खींचते रहते हैं।

रोगीका मन रोगी होता है। रोगमय मन:स्थितिसे शरीरमें रोगका प्रादुर्भाव होता है; काल्पनिक भयकी आशंकासे शरीर संतप्त हो उठता है। वासना तथा क्रोध उत्तेजना उत्पन्न कर शरीरको कँपा डालते हैं। निराशा, वेदना और कष्टके विचारोंसे क्लेशमयी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। ईर्ष्या और प्रतिहिंसाके विचारोंसे शरीर दग्ध हो उठता है। लोभमें मनुष्य कल्पनाके महल निर्मित करता

रहता है। संदेहदृष्टिसे मनुष्य प्रत्येक व्यक्ति अथवा स्थितिपर अविश्वास प्रकट करता रहता है। दुष्ट तथा अहितकर मनोवृत्तियोंके उद्दीप्त होनेसे मनका अन्तःप्रदेश अस्त-व्यस्त तथा संतप्त हो उठता है।

हमारा कोई अनुभव व्यर्थ नहीं जाता। वह हमारे अन्तर्जगत्में अपनी जड़ अवश्य छोड़ जाता है। जैसे फसल कट जानेपर भी खेतमें वृक्षोंकी जड़ें उगी रहती हैं, वैसे ही हमारे सब अच्छे-बुरे, कड़वे-मीठे अनुभव, बाह्य जगत्की अनुभूतियाँ सदा सर्वदाके लिये अन्तर्जगत्में अंकित हो जाती हैं। उसी ज्ञान तथा संस्कारसे हमारा कार्य संचालित होता रहता है। हमारे आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक सभी प्रकारके दुःख मनद्वारा संगृहीत किसी दुष्ट विकारके परिणाम होते हैं।

दुर्भावना तथा सद्भावना

हमारे अन्तर्जगत्का निर्माण करनेवाली दो वृत्तियाँ हैं— सद्भावना तथा दुर्भावना। ये जीवनके देखनेके दो विभिन्न मार्ग हैं। आप जिस मार्गसे जीवन-यात्रापर निकलते हैं, उस मार्गमें वैसी ही वस्तुएँ आपको स्थान-स्थानपर मिलती जाती हैं। दुर्भावनाका मार्ग कण्टकों तथा शूलोंसे परिपूर्ण है। इस रास्तेसे जानेवालोंको सदा अतृप्तिका सामना करना पड़ता है। वह ईर्ष्या, प्रतिशोध, संघर्ष तथा हिंसाकी वृत्तियोंमें उलझा रहता है। दूसरोंपर अविश्वास और शंका करता है, सबको अपना शत्रु समझता है, जगत् उसे अपनी उन्नतिके मार्गमें अवरोध करता दिखायी देता है। उसके आत्मविरोधी विचार दुःखोंकी सृष्टि कर उसे मनकी नारकी स्थितिमें धक्का दे देते हैं। वह सदा अशान्त और अतृप्त रहता है।

दूसरा मार्ग सद्भावनाका है। इसमें मनुष्यके दैवी गुणोंका पावन प्रकाश है। यह मनुष्यकी उच्च स्थितिको लानेवाला आध्यात्मिक मार्ग है। इस पथमें विचरण करनेवाला पथिक प्रत्येक व्यक्तिको आत्मरूपसे देखता है, सबको अपना हितैषी मानता है, सबसे स्नेह करता है और सबकी उन्नतिमें सहायता करता है। अन्य जीव भी उससे प्रेम, सेवा, सहायता, उन्नति, उदारता प्राप्त करते हैं। संसारके समग्र प्राणियोंसे आत्मभाव रखनेके कारण स्वयं उसकी मनःस्थिति शान्त और संतुलनकी रहती है। उसमें व्यर्थके संघर्ष, प्रतिहिंसा, स्वार्थ या वासनाके ताण्डव नहीं होते। आध्यात्मिक शक्ति उसके मनमें एकत्रित होती

चलती है। वह दूसरोंके लिये आत्मत्याग करनेके आनन्दसे परिचित होता है। त्याग, बलिदान और सेवाभाव उसके संकल्पोंको दृढ़ता प्रदान करते हैं। आध्यात्मिक शक्ति उसके अन्तर्जगत्में संचित होती चलती है।

सद्भावना सदा फलित होनेवाली जादूकी शक्ति है। जो जितनी ही सद्भावना दूसरोंको देता है, वह उससे दुगुनी-चौगुनी सद्भावनाएँ बदलेमें पाता है। सद्भावना कभी व्यर्थ नहीं जाती। सद्भावनाएँ गुप्तरूपसे दूसरोंको हमारी ओर आकृष्ट करती हैं। यदि दूसरा आकृष्ट न भी हो, तो ये स्वयं हमें अमित शान्ति, धैर्य और साहस देनेवाली हैं। ये हमें संकुचितितासे बचाकर उदार बनाती हैं और अन्ततः कल्याणका कारण बनती हैं।

मानसिक द्वन्द्वोंसे मुक्त रहिये

मानसिक संतुलन भंग होनेसे पूर्व हमारे मनमें मानसिक द्वन्द्वोंकी उत्पत्ति होती है। दो विरोधी भावोंमें संघर्षकी स्थितिको द्वन्द्व कहते हैं। द्वन्द्वोंमें भय एक महत्त्वपूर्ण विकार है। इच्छा और भय, लोभ तथा भय, चोरी तथा पकड़े जानेका भय अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न करते हैं। भय एवं अनिश्चितता, चिन्ता और आशंका मानसिक उलझनें बनाती हैं। इनसे मनमें तनावकी स्थिति पैदा हो जाती है। भयसे गुप्त मानसिक उलझनें (न्यूरासिस) बनती हैं। प्रायः हमारे मनमें कोई इच्छा उत्पन्न होती है, किंतु उसे प्राप्त न करनेके कारण भावना-ग्रन्थि बनती है। ये ग्रन्थियाँ नाना विकारजन्य मूर्खताओंमें प्रकट होती हैं।

भय मनुष्यके विकासको रोकनेवाला दुष्ट विकार है। माता-पिताओं तथा गुरुओंको चाहिये कि बच्चोंको अधिक सजाएँ न दें; बच्चोंपर अनुचित सख्ती न बरतें। कठोर व्यवहारसे बच्चोंमें भयकी गुप्त ग्रन्थियाँ सदाके लिये बन जाती हैं, जो जीवनभर उनके कार्योंमें अर्द्धविक्षिप्तता, बेढंगापन, आत्महीनता या व्यर्थ चिन्ताएँ, बेबसी उत्पन्न करती हैं। मनुष्यके संकल्पोंकी कमजोरीके कारण ये ही द्वन्द्व हैं। अच्छे व्यक्तित्ववाले आदमी भी कभी-कभी इनके शिकार बन जाते हैं। संतुलनके अभावमें वे आत्मभर्त्सना किया करते हैं।

उन्नति, समृद्धि तथा स्वस्थताके लिये मानसिक द्वन्द्वोंसे बचे रहें। मनमें उचित विचार रखना, भविष्यके अनिष्टोंसे मुक्त रहना, वाणीसे मधुर बोलना, सबका भला चाहना, मनको उदार रखना— ये वे विचार-पद्धतियाँ हैं, जिनसे मनुष्य सभी

प्रकारकी परिस्थितियोंमें शान्त बना रहता है। उचित विचार क्या है? जिन विचारोंसे किसीका अनिष्ट नहीं होता, जो सबके प्रति सद्भावना, प्रेम, उदारतासे युक्त हैं, जिनमें मनुष्यमात्रकी भलाईके लिये लगन, प्रेम, उत्साह और सेवा-भावना है, जो सदा नये आध्यात्मिक भावनासे स्निग्ध हैं, वे ही सही विचार हैं।

सदा नये समाजोपयोगी कार्य करने, आशावादी भावनाएँ बनाये रखने और आध्यात्मिक चिन्तन करनेसे मनुष्य द्वन्द्वोंसे बच सकता है। जो व्यक्ति नये-नये लोकोपकारी कार्य करेगा, उसके मनमें द्वन्द्व कैसे ठहर सकते हैं? जहाँ सद्ज्ञानका दिव्य प्रकाश है, वहाँ अज्ञानान्धकार कैसे ठहर सकता है? कार्यमें निरत रहनेसे मनुष्य आलस्यसे बच सकता है। परोपकाररत साधकमें आत्मविश्वास बढ़ता है। एक कार्यके पश्चात् वह दूसरे कार्यमें सफलताएँ प्राप्त करता चलता है। सही विचार, उचित दृष्टिकोण, मौलिक दृष्टि और निरन्तर कार्य करनेसे द्वन्द्व दूर होते हैं।

संक्षेपमें, हमारे मनको उन्नत या अवनत करनेवाली दो शक्तियाँ हैं—ज्ञान तथा कर्म। हम अध्ययन, मनन, सत्संग तथा संसारके नाना अनुभवोंसे ज्ञान प्राप्त करते हैं। फिर उनकी सहायतासे कर्ममें प्रविष्ट होते हैं। यदि ज्ञान और कर्म बराबर मात्रामें अपना कार्य करते हैं, तो मानसिक संतुलन स्थिर रहता है। ज्ञान और कर्मका महत्त्व हमारे प्राचीन विचारकों*ने माना है। बिना कर्मके ज्ञान अधूरा है; इसी प्रकार बिना ज्ञानके कर्म अन्धा है। दोनोंका पूर्ण सामंजस्य ही अपेक्षित है। ज्ञान तथा कर्म जब साथ-साथ बढ़ते हैं, तब जीवन आगे बढ़ता है। कर्म तथा ज्ञानके सामंजस्यद्वारा हम द्वन्द्वोंका निवारण करें। निरर्थक अनुचित और अनुपयोगी कार्योंसे समय बचाकर अपना समय उपयोगी कर्मोंमें व्यतीत करना चाहिये। कर्मक्रमको धर्ममय बनानेसे द्वन्द्व छूटते हैं।

मानसिक तनाव या खिंचावकी स्थिति न आने दें। अर्थात् जैसे ही कोई इच्छा उत्पन्न हो, वैसे ही उसके पक्ष या विपक्षमें निर्णय कर डालें। यह करूँ या न करूँ—ऐसी संशयात्मक मनःस्थिति उत्पन्न न होने दें। संशयमें पड़े रहनेसे मनुष्यमें बड़ी दुर्बलता आती है। तनाव बढ़ता है। यदि कोई इच्छा उत्पन्न हो, तो उसकी पूर्ति इस ढंगसे करें कि वह सदा-सर्वदाके लिये निवारित हो जाय।

* कर्म और ज्ञान जीवरूपी पक्षीके दो पंख हैं—योगवासिष्ठ।

जिन वस्तुओं, नामों या सजाओंसे बच्चोंको भय उत्पन्न होता है, वे व्यवहारमें न लायें। बच्चोंको उत्साहित किया जाय और सजा इस प्रकार दी जाय कि वे मानसिक ग्रन्थियोंसे बच सकें।

बड़े व्यक्तियोंमें आत्मसंकेत तथा सजेशनसे ग्रन्थियोंका निवारण चलता रहे। आत्महीनता या आत्मलघुतासे ग्रसित व्यक्तियोंको श्रेष्ठताके संकेतद्वारा प्रोत्साहित किया जाय।

पूर्ण विकसित व्यक्तियोंको चार प्रकारके भय होते हैं—१-मृत्युका भय, २-वृद्धत्वका भय, ३-गरीबीका भय, ४-प्रियजनोंके अनिष्टका भय। मृत्यु तो अवश्यम्भावी है। जब हम कहते हैं कि अमुक वयस्क मृत्युसे डरता है, तब हम वास्तवमें यह कहना चाहते हैं कि वह मृत्युसे नहीं, अपने पापोंके दुष्परिणामोंसे भयभीत होता है। वह इस बातसे शंकित रहता है कि अब उसे अपनी दुष्टताके कर्मोंकी सजा मिलेगी। उसकी अन्तश्चेतना ऐसा अनुभव करती है कि इस दिव्य जीवनका मैंने जो दुरुपयोग किया है, उसके फलस्वरूप मरनेके पश्चात् मुझे दुर्गतिमें जाना पड़ेगा, अत: मनुष्यको अपने कार्य उन्नत करने चाहिये। आत्मोन्नतिके कामों—सद्ग्रन्थावलोकन, परोपकार, सेवा, त्याग, तपश्चर्या, साधना-सत्कर्मोंमें निरत रहना चाहिये। ऐसे कार्य करने चाहिये कि उसे पछताना या आत्मभर्त्सना न करनी पड़े। आप ऐसा जीवन व्यतीत कीजिये कि आत्मग्लानि उत्पन्न न हो। मृत्युको अधिक उन्नत अवस्थामें जानेकी एक स्थिति मानिये। जब कोई व्यक्ति वर्तमानकी अपेक्षा अधिक अच्छी, उन्नत और सुखकर अवस्थामें जाता है, तब उसे कष्ट नहीं, प्रसन्नता होती है। अपने जीवनको धार्मिक बनाकर शुभ भावनाओंमें निरत रह सत्कर्म करनेसे मृत्युका भय छूट सकता है।

वृद्धावस्थाको जीवनका अन्त नहीं, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टियोंसे समुन्नत जीवनका प्रवेशद्वार मानिये। वृद्धावस्था आदरकी पात्र है। वह घृणाकी वस्तु नहीं है। वृद्ध जवानोंकी अपेक्षा शारीरिक शक्तिको छोड़कर हर प्रकारसे बढ़ा हुआ होता है। वृद्धावस्था वह परिपुष्ट समुन्नत दशा है, जिसके लिये प्रकृति आरम्भसे तैयारी करती है। अत: बुढ़ापेका डर मनसे सदाके लिये निकाल दीजिये।

गरीबीका भय व्यर्थ है, यदि आपका जीवन संयम और दूरदर्शितासे व्यतीत हो रहा है। आप जिस स्थिति, जिस अवस्था—हैसियत या आयके व्यक्ति हों,

कुछ-न-कुछ अवश्य बचा सकते हैं। यह संचित धन आपको गरीबीसे सुरक्षित रख सकता है।

प्रियजनोंके अनिष्टका भय त्याज्य है। आप उनके प्रति शुभ भावनाएँ रखिये, यथासम्भव सेवा कीजिये, उनके लिये बलिदान करनेको प्रस्तुत रहिये। बस, इससे अधिक आप कुछ नहीं कर सकते। समाजमें मजबूरियाँ होती हैं। आदमी उनमें फँसकर जो हो जाय, उसके प्रति कोई चारा नहीं है।

मानसिक संतुलन स्थिर रखनेके लिये मनोबलकी अतीव आवश्यकता है। जिसका मनोबल बढ़ा हुआ है, वह द्वन्द्वोंसे मुक्त रहता है। मनोबल वह शक्ति है, जो हमारे समस्त अन्तर्द्वन्द्वोंके ऊपर नियन्त्रण रखती है। समुन्नत मनोबलसे हमारी क्रियाएँ शुभ रहती हैं। ध्यान और एकाग्रताके अभ्यासद्वारा मनोबलकी वृद्धि करते रहिये। विचार, भाव तथा आचार—इन तीनोंका पूर्ण सामंजस्य रखिये। शुभ मति, शुभ विचार तथा इन शुभ संस्कारोंके शुभ परिणामस्वरूप अच्छा आचार रखनेसे मनोबल बढ़ता है। गंदगीकी ओर प्रवृत्त होने, दुराचार करने, विषय-वासनामें लगे रहने, अपनी शक्तिसे बड़ा काम ले लेनेसे मनोबल घटता है। सद्विचार सीखें। उन्नत विचारोंसे सद्भाव, सद्भावसे सदाचार उत्पन्न होता है। पहले छोटे कार्योंमें सफलता प्राप्त करें, फिर अपेक्षाकृत कुछ बड़े कामोंको हाथमें लें और इस प्रकार मनोबलको बढ़ाते रहें। धीरे-धीरे सफलता प्राप्त करते रहनेसे मनुष्यको अपनी शक्तियोंके प्रति विश्वास बढ़ जाता है और निर्णयात्मक बुद्धि जाग्रत् होती है।

ध्यानका अभ्यास करनेसे मानसिक संतुलन बना रहता है। ध्यान जम जानेपर मनुष्य जब चाहे तब चित्तवृत्ति और विचार-शक्तियोंका प्रवाह फेंक सकता है। इसके लिये दीर्घकालीन सतत अभ्यासकी आवश्यकता है।

अपने कार्यों, संकल्पों और मन्तव्योंमें तन्मय हो जाइये और व्यर्थके निकम्मे चिन्तनसे बचिये। जो अपने उद्देश्यमें तन्मय रहता है, वह संतुलित रहता है। निकम्मा सदैव व्यग्र और अशान्त बना रहता है। गीतामें वर्णित कर्मयोगका तात्पर्य यही है कि कुशलतापूर्वक निष्कामभावसे अपने कर्ममें तन्मय हो जाइये, उद्देश्यहीन चिन्तनसे दूर रहिये, कर्मरत व्यक्ति पूर्ण संतुलित होता है। आपका जीवन सदुद्देश्योंकी प्राप्तिमें व्यतीत होना चाहिये और कार्यक्रम सदा धर्ममय होना चाहिये।

प्रतिस्पर्धाकी भावनासे हानि

जीवन गति है। जीवन-धारा एक सरिताके प्रवाहकी भाँति सतत गतिशील है। जैसे एक ही स्थानपर टिका या रुका हुआ होनेके कारण जल दूषित हो जाता है, वैसे ही जीवन-प्रवाहमें संतोष भी हानिकारक सिद्ध हो सकता है। पूर्ण परिश्रम करनेपर जो कुछ प्राप्त हो हमें उससे संतोष करना चाहिये—यह ठीक है; किंतु उतावलापन, सदा आगे बढ़ने और अपनी गति, सामाजिक स्थिति, पद, घर-बार, सौन्दर्य इत्यादिको सदा दूसरोंसे मिलाना, तुलनात्मक दृष्टिसे अपनेको नीचा पाना, फिर रात-दिन उसी फिक्रमें पड़े रहना—प्रतिस्पर्धाकी यह भावना सीमाका अतिक्रमण करनेसे घातक दुष्परिणामोंको उत्पन्न कर मनुष्यका जीवन अशान्तिसे भर देनेवाली है।

हमारा अमुक मित्र उन्नतिकी दौड़में हमसे आगे निकल गया, अमुकको उच्च पद-प्रतिष्ठा, गौरव प्राप्त हो गया, अमुककी पत्नी कितनी सुन्दर है, अमुकका निवास-स्थान कितना भव्य है, पुत्र-पुत्री कितने सभ्य हैं—आदि-आदि प्रतिस्पर्धाजनक भावनाएँ मानसिक तनावकी सृष्टि कर पाचन-शक्तिको निर्बल कर देती हैं। नसोंके तने रहनेसे सुख-शान्ति प्राप्त नहीं होते और मनुष्य सदा अपने विरोधी विचारों, दूषित कल्पनाओंको ही मनमें पोसता रहता है।

प्रतिस्पर्धासे चिन्ता और ईर्ष्या उत्पन्न होती हैं और पेटमें कब्ज, अपच तथा अल्सरकी बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, त्वचाकी बीमारियाँ फूटती हैं और शरीरका समग्र स्नायु-मण्डल अनियन्त्रित हो जाता है। भूख नहीं लगती और मनुष्य दुबला हो जाता है।

श्रीएडवर्ड विगम अपनी पुस्तक 'आनन्द-प्राप्तिके नये उपाय' में लिखते हैं—

जब आपको जीवन-यापनकी भौतिक सुविधाएँ प्राप्त हो जायँ, भोजन, वस्त्र, मकान, अच्छा स्वास्थ्य इत्यादि—तो आपकी प्रसन्नता या दुःख बहुत कुछ इस बातपर निर्भर है कि आप किस प्रकार अपने-आपको दूसरोंसे मिलाते या तुलना करते हैं। यदि आप उनसे एक बातमें अपने-आपको पूरा या ऊँचा उठा

हुआ पाते हैं, तो किसी दूसरे तत्त्वमें गिरा हुआ, अविश्वासी या निर्धन पाते हैं। आप अपने व्यक्तित्वके इस गिरे हुए पक्षपर निरन्तर चिन्तन कर मनको चिन्ता और कल्पित वेदनाके भारसे भर लेते हैं। यदि आप अपने गुण, सुविधाओं और समृद्धियों अर्थात् अपने उन्नत पक्षसे दूसरोंका मिलान करते रहें और अपने प्रति हितैषी बने रहें, तो आप जीवनके प्रति सतत एक चाव, नयी रुचि, उत्साह और उन्नतिकी ओर लगे रहेंगे। आपकी योग्यताएँ उत्तरोत्तर बढ़ती रहेंगी और विवेक परिपक्व हो जायगा।

मनुष्य सर्वप्रथम आत्म-स्थायित्व चाहता है अर्थात् मरना नहीं चाहता। वह अपने शरीरको रोग और मृत्युसे सुरक्षित रखना चाहता है। इसी सिद्धान्तको गहराईसे देखें तो हम कह सकते हैं कि हम अपने अहंकी रक्षा चाहते हैं, अपने व्यक्तित्वपर आक्रमण करनेवालोंसे बचना चाहते हैं, अपनेको अपकीर्तिसे बचाना चाहते हैं। दूसरे हमारे विषयमें क्या सोचते हैं, यह बात हमारे विषयमें उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं, जितनी यह बात कि स्वयं अपने ही विषयमें उनके माध्यमसे सोची गयी घृणित या गिरी हुई मान्यताएँ। इसी बातको यों कहिये कि हम भ्रमवश यों ही सोचने लगते हैं कि अमुक हमें गरीब समझता होगा; अमुक हमें मूर्ख, मंदमति कहता होगा; अमुक हमें अप्रतिष्ठित समझता होगा इत्यादि। इनमेंसे अधिकांश हमारी झूठी कल्पनाएँ ही होती हैं; क्योंकि इस विशाल जन-समाजको इतना अवकाश कहाँ कि केवल हमारी ही टीका-टिप्पणी करता रहे। उसे अन्य बहुत-से महत्त्वपूर्ण कार्य हैं।

मनुष्य समस्त कार्योंके मूलमें दूसरोंद्वारा अपने कार्योंकी प्रशंसा प्राप्त करना चाहता है। जब हम समझते हैं कि कोई हमें पसंद नहीं कर रहा है, तो हम अपने-आपको हीन, कमजोर और अरक्षित-सा समझने लगते हैं। जौन डिवि कहते हैं, 'मानव-प्रवृत्तिकी सबसे उत्कट अभिलाषा महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त करना ही है। लोग महत्ता प्राप्त करनेके लिये भूखे रहते हैं पर उत्तमोत्तम वस्त्र, आलीशान मकान, मोटर-बंगला इत्यादि दिखावटी चीजें एकत्रित करते हैं।' तनिक विचार करें केवल वस्त्रोंपर ही आप कितना अपव्यय केवल महत्ता-प्राप्तिके लिये कर देते हैं। अच्छे वस्त्र या आभूषण पहिनकर आप प्रतिस्पर्धामें मन-ही-मन ऊँचे उठ जाते हैं और एक मिथ्या दर्पसे फूल उठते हैं। 'मैं इनसे

श्रेष्ठ हूँ, ऊँचा हूँ, मेरी बराबरीका कोई नहीं है (चाहे वह वस्त्राभूषण-जैसी क्षुद्र बातमें ही सही)।' इस प्रकारकी एक भी चीज मिलते ही आप अन्य गुणोंमें भी अपने-आपको दूसरोंके समान मान बैठते हैं। इस कल्पित श्रेष्ठता और उच्चताकी भावनासे आपके अहं-भावकी क्षणिक तृप्ति होती है। स्पर्धाद्वारा अपनेको श्रेष्ठ या निकृष्ट, ऊँचा उठा हुआ अथवा नीचा गिरा हुआ समझना मानव-प्रकृतिका एक निगूढ़तम रहस्य है। इसके भले-बुरे उपयोगपर हमारे जीवनका सुख या दुःख निर्भर है। यदि हम इस तुलनात्मक वृत्तिका सदुपयोग करें तो सुखी, अन्यथा दुःखी बने रहेंगे।

अपने-आपको इसलिये मत धिक्कारिये कि आप अपनेको हीन पाते हैं। समझदारीसे यदि आप अपनी तुलना दूसरोंसे करें और सत्यतासे परखें, तो आपको सौन्दर्य, स्वास्थ्य, धन, प्रतिष्ठा, स्थिति आदिकी नीचाईसे उत्पन्न ग्लानि उत्पन्न न होगी। वास्तवमें आप गलती यह कर बैठते हैं कि अपने व्यक्तित्वकी दुर्बलताओंको दूसरोंके व्यक्तित्वकी अच्छाइयों या विशिष्टताओंसे मिलाने लगते हैं। आपमें कुछ कमजोरियाँ हैं, तो स्मरण रखिये जिन्हें आप श्रेष्ठ समझते हैं, उन व्यक्तियोंमें भी निर्बलताएँ हैं। उनकी अच्छाइयाँ देखते हैं तो कृपया अपने व्यक्तित्वको सहानुभूतिसे परखकर अपनी विशिष्टताएँ भी खोजिये। आपको अवश्य कुछ-न-कुछ अच्छाइयाँ अपनेमें मिलेंगी जो आपको आगे बढ़ने, सद्गुणोंका विकास करनेकी प्रेरणा देंगी।

आत्म-विश्वास स्वयं एक भावनाग्रन्थि है, एक स्वस्थ मानसिक आदत है, तो दूसरी ओर आत्महीनता अर्थात् अपने विपक्षमें सोचना और अपनेको दूसरोंसे नीचा समझना एक दूसरी ग्रन्थि है, एक अस्वस्थ मानसिक आदत है। तुलनात्मक दृष्टिसे दूसरी अस्वस्थ आदतके गुलाम बनना दुःखी जीवन बितानेकी तैयारी करना है। गलत चीजोंकी तुलनासे मनुष्यके जीवनमें भारी असंतोष छा जाता है। अतः या तो आप अपनी अच्छाइयोंको दूसरोंकी अच्छाइयोंसे मिलाइये अथवा मिलानका प्रश्न ही न उठाइये।

अपनी तुलनात्मक दृष्टिका विश्लेषण कीजिये। थोड़ी देरके लिये यह सोचिये कि आखिर वे कौन-सी बातें हैं जिनसे आप अपना दूसरोंसे मिलान करने बैठे हैं? धन, प्रतिष्ठा, प्रभुता, महत्ता, पत्नी, सौन्दर्य, स्वास्थ्य, बुद्धि—

अवश्य इन्हींमेंसे कोई भावना आपके मनमें विद्रोह मचा रही है। प्रारम्भमें तो यही मानिये कि ईश्वरने उपर्युक्त सब गुणोंमें सबको सब चीजें समान मात्रामें प्रदान नहीं की हैं। किसीमें एक अधिक है तो किसीमें दूसरी बढ़ी हुई है। एक व्यक्ति बुद्धिमान् विद्वान् है, तो उसमें शारीरिक सौन्दर्य बिलकुल नहीं है, दूसरा रुपये-पैसेवाला है तो उसे समाजसे आदर और प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं। तीसरेके पास सौन्दर्य है, तो चरित्र नहीं है। संक्षेपमें प्रत्येकका अपना-अपना क्षेत्र पृथक्-पृथक् है। जीवन एक दौड़ है। इस दौड़में हम सब अपने ढंगसे दौड़ रहे हैं। कोई आगे है तो कोई पीछे।

एडवर्ड एल० थौर्नडाइक कहते हैं, 'हम सदा किसी-न-किसी व्यक्तिसे आगे निकलते जा रहे हैं। हमारे आगे दो व्यक्ति भाग रहे हैं, तो दस व्यक्ति पीछे भी तो छूटे जा रहे हैं। फिर हम उन पीछेवाले व्यक्तियोंको देखकर थोड़ा-सा संतोष क्यों न लें और नयी प्रेरणासे आगे चलनेवाले दो व्यक्तियोंको हरानेकी हिम्मत क्यों न करें।'

वास्तवमें हमें चाहिये कि अपनी विद्या, बुद्धि, धन आदिको समूचे समाजकी विद्या, बुद्धि, धन आदिसे तुलना न करें। एक सुन्दर स्त्रीको चाहिये कि वह यह सोचकर दु:खी न रहे कि हाय मैं सबसे सुन्दर स्त्री क्यों न हुई। उसे अपने मुहल्ले, ग्राम या प्रान्तकी साधारण सौन्दर्यवाली स्त्रियोंसे मिलान कर ही सुख-संतोष करना चाहिये। गलत मिलान करनेकी प्रवृत्ति प्राय: बचपनमें उत्पन्न होती है। माता-पिता एवं शिक्षकोंका कर्तव्य है कि उचित दिशाओं—स्थितियोंमें ही तुलनाकी प्रवृत्तिको विकसित होने दें। आप अच्छाइयोंको अच्छाइयोंसे ही मिलाइये और उत्साहपूर्वक उनकी अभिवृद्धिका प्रयत्न कीजिये। यह समझकर हतोत्साह न हो जाइये कि यह कठिन या कष्टसाध्य है। गलत चीजोंकी तुलना करना और अपनेको कमजोर पाकर चिन्तित होना हीनत्वकी भावना-ग्रन्थि उत्पन्न करना है। सावधान !

जीवनकी भूलें

सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी विचारक रूसोने अपने आत्मचरितमें लिखा है कि 'वही आत्मचरित श्रेष्ठ है, जिसमें लेखक बिना किसी बनावटके सही रूपमें अपने चरित्रको प्रकट करे। उसने जो भूलें की हों, उन्हें स्पष्टत: स्वीकार करे; उनके लिये विक्षोभ प्रकट करे और जनताको अपना वास्तविक रूप देखने दे।'

महात्मा गाँधीजीने अपनी आत्मकथामें जहाँ अन्य कार्योंका निर्देश किया है, स्वयं अपनी भूलोंका भी विवेचन कर डाला है। 'सत्यके प्रयोग' यह उनकी अनुभूतियोंका नाम है। ये अनुभव अच्छे-बुरे जैसे भी हों, जनताके समक्ष आने चाहिये, जिससे वे स्वयं उचित-अनुचित, नीर-क्षीरका विवेक कर श्रेष्ठ मार्गपर चलते रहें।

भूल मनुष्यकी एक बड़ी निर्बलता है। हममेंसे कदाचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा, जिसने जीवनमें भूलें न की हों, अथवा जो सर्वथा भूलोंसे मुक्त हो। यदि यह कहा जाय कि मनुष्य भूलोंका पुतला है, तो भी कोई अतिशयोक्ति न होगी! भूलें अनेक प्रकारकी हो सकती हैं—लेन-देनकी भूलें, पाठ याद न करनेकी भूलें, वासनाके कुचक्र अथवा कुसंगमें पड़कर की गयी बचपनकी भूलें; माता-पिता, अफसर या बड़े व्यक्तियोंसे की गयी अशिष्टतासम्बन्धी भूलें, भावना-प्रवाह, उत्तेजना, विक्षोभ, क्रोध, प्रेमोन्मादसे उत्पन्न भूलें। भूलोंका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और विशद है। पिछले दिनों साम्प्रदायिक विद्वेषमें आकर रक्तपात, हिंसा, बलात्कार जैसे जघन्य कार्य हुए। युद्धके कारण वस्तुएँ महँगी हुईं और रिश्वत, काला बाजार, दहेज इत्यादिकी भूलें समाजमें उठ खड़ी हुईं। घरोंमें मार-पीट, अत्याचार, गाली-गलौज, पड़ोसमें अदावत, बाजारोंकी दुर्घटनाएँ, शराबके नशेमें किये गये क्षणिक अत्याचार, मानहानि या व्यभिचार, जूआ और सट्टा—ये सब भूलोंके ही विभिन्न प्रकार हैं।

भूलोंके कारण अनेक हैं। कहीं राग है, तो कहीं द्वेष; कहीं प्रलोभन है, तो कहीं आलस्य; कहीं आवेश है, तो कहीं विक्षोभ। हृदय या भावनाके आन्तरिक आवेगके वशमें होकर प्रायः हम कुछ-का-कुछ कर बैठते हैं। जब मानसिक क्षोभका तूफान कम होता है, चित्त स्थिर होता है और विवेक जाग्रत् होता है, तब अपनी भूलोंपर आत्मग्लानि होती है।

आवेश और उत्तेजना एक प्रकारके मानसिक तूफान हैं। जैसे वायुमण्डलमें तूफान आनेसे पेड़-पौधे काँप उठते हैं, पत्तियाँ थरथराने और हिलने लगती हैं, टहनियाँ टूट-टूटकर गिर जाती हैं, धूल उड़नेसे नेत्रोंमें धूल छा जाती है, कुछ दीखता नहीं, इसी प्रकार अन्तर्मुखी आवेग आनेपर रक्तका संचार बढ़ जाता है, मनुष्य विचित्र चेष्टाएँ करता है, उत्तेजनाका आन्तरिक आन्दोलन हमारे शुभ विचारों और विवेकको कुण्ठित कर देता है; काम, क्रोध, लोभ, मोह, घृणा, भय आदिके आवेश सम्पूर्ण शरीरको थरथरा डालते हैं। अशान्त स्थितिमें बुद्धि ठीक प्रकार कार्य नहीं करती और प्रायः हमसे छोटी-बड़ी भूलें हो जाती हैं।

कुछ भूलें अज्ञान, अशिक्षा या कुसंगके कारण होती हैं। ऐसे व्यक्ति एक प्रकारके गहन मानसिक अंधकारमें निवास करते हैं और उन्हें अपनी गलतीका ज्ञान ही नहीं होता। ज्ञान-वृद्धि होनेपर उन्हें धीरे-धीरे अपनी भूलका पता चलता है।

आलस्य हमारी भूलोंका निर्माता बनता है। मान लीजिये आपका यह नित्यका कर्म है कि रात्रिमें सोनेके पूर्व घरके किवाड़ अच्छी तरह बंद कर शय्या ग्रहण करते हैं। आलस्य आया और भूल गये। उसी दिन चोरी हो गयी। यह चोरी आपकी भूलका दुष्परिणाम है। कुंडी लगाना भूलना, ताला-कुंजीके मामलेमें असावधानी, वस्तुओंको, पेटियोंकी चाभी आदिको नियत स्थानपर न रखना, बाहरसे आकर वस्त्र इत्यादि अस्त-व्यस्त फेंक देना, तेलकी शीशी फर्शपर छोड़ देना, चीनीके प्याले साफ न कर यों ही पड़े रहने देना, मामूली फटे हुए वस्त्रको न सिलवाना, जूते पालिश न करना, दफ्तर या रेलवे स्टेशनपर देरसे जाना, पत्रोत्तर न देना आलस्यजनित भूलें हैं। आपको जुखाम है, सिरदर्द है, शरीर दुखता है और आप उसकी ओर ध्यान नहीं देते हैं तो यह भूल बढ़कर

किसी भी बड़े रोगमें विकसित हो सकती है। दीवारमें पीपलका छोटा-सा पौधा जड़ पकड़ गया है और आप उसे उखाड़नेमें आलस्य कर रहे हैं, तो सम्भव है कि इस आलस्यके कारण किसी दिन घर ही टूटकर गिर पड़े।

लेन-देनकी भूलें बड़े भयंकर दुष्परिणाम दिखलाती हैं। एक बार ऋण लेनेके पश्चात् यदि उसकी अदायगीका उचित प्रबन्ध न हो और आलस्य चलता रहे, तो दिवालिया होनेमें कोई संदेह नहीं। आप बाजारमें निकलते हैं। आपका मन कभी उत्तम वस्त्र, नयी-नयी वस्तुओं, फैशनकी चीजों, पुस्तकों इत्यादिपर जाता है। अपनी सामर्थ्यकी ओर न देखकर आप तुरंत खरीद बैठते हैं। उधार ही सही, मूल्य फिर चुका देंगे। हमें वेतन तो मिलेगा ही। इधर दूकानदारका बिल बढ़ता जाता है। बढ़ते-बढ़ते हाथमें आनेसे पूर्व ही वेतन समाप्त हो जाता है। बड़े-बड़े विद्वान्, राजनीतिज्ञ, मन्त्री, उपदेशक ऋणके मामलेमें आलसी रहते हैं। बैकन कुशल विद्वान् था, किंतु अपव्ययके कारण वह ऋणग्रस्त हो गया था। उसे सदा रुपयेकी इच्छा रहने लगी। वह रिश्वत लेने लगा। उसकी आवश्यकताएँ बढ़ीं। रिश्वतमें पकड़ा गया, उसके शत्रुओंकी बन आयी, मुकदमा चला, उसका पतन हुआ। पिट इंगलैंडमें देशकी सम्पत्तिका जिम्मेदार रहा था, पर स्वयं हमेशा कर्जदार रहा। पिटकी मृत्युपर उसके आलस्यके कारण राष्ट्रने चालीस हजार पौंड महाजनोंको दिये थे। लार्ड मेलविल जैसे घरके हिसाब-किताबमें आलसी था, वैसे ही राष्ट्रके व्ययके सम्बन्धमें लापरवाह रहा। फाक्स नामक व्यक्ति बड़ा धनाढ्य था, पर जुआ खेलनेके व्यसनके कारण एक दिनमें उसने ग्यारह हजार पौंड हारे थे। शेरिडिन-जैसा नाट्यकार सदैव ऋणमें रहा। उसने एक बार छः दिनमें अपनी पत्नीके १६०० पौंड व्यय कर डाले थे। रुपये-सम्बन्धी ये भूलें निश्चय ही जीवनपर्यन्त दुःख देनेवाली हैं।

बिना पर्याप्त सोचे-विचारे यों ही किसीको वचन दे देना, प्रतिज्ञाबद्ध हो जाना, फिर उस वचन-पालनमें अपनेको असमर्थ पाना, लज्जित होकर अपनी भूल स्वीकार करना—इस प्रकारकी भूलें प्रायः अपनी शक्तिके विषयमें गलत धारणा या अपनी सामर्थ्यको खूब बढ़ा-चढ़ाकर देखनेसे उत्पन्न होती हैं। कुछ व्यक्ति स्वप्निल जगत्में विचरण कर यथार्थता और अपनी छोटी शक्तिको

भूलकर ऐसे लम्बे-चौड़े वायदे कर लेते हैं, कि आयुभर उन्हें पूर्ण नहीं कर पाते। किसी बड़े व्यापारको बिना समुचित पूँजीके हाथमें ले लेना, पत्र-प्रकाशन, प्रेस संचालन अथवा लेन-देनके पेशे छोटी पूँजीको स्वाहा कर बैठते हैं।

विवाह, दहेज, मृत्युभोज, यात्रा अथवा भोगविलासमें अपव्यय कर दूसरोंपर झूठी शान जमानेकी भूल बड़ी दुःखदायी सिद्ध होती है। इसी प्रकार अनियन्त्रित बच्चोंको जन्म देनेवाले माता-पिताको वृद्ध होनेपर अपनी भूलके लिये पछताना पड़ता है। इन क्षणिक बातोंसे दूसरोंपर न शान ही जमती है, न पैसे ही पास रहते हैं।

बुद्धि और तर्ककी अनन्त शक्तियोंके बावजूद मनुष्य कभी प्रमाद, कभी आलस्य, उत्तेजना, भावना या प्रलोभनवश कहीं-न-कहीं भूल कर ही बैठता है। भूल हो जाना एक स्वाभाविक कमजोरी है; किंतु हमें ध्यान यही रखना चाहिये कि वही भूल दुबारा न दोहरायी जाय। भूलकी पुनरावृत्ति करना कदाचित् मनुष्यकी सबसे बड़ी भूल है।

प्रायः देखा जाता है कि व्यक्ति एक भूलको दबानेके लिये चार-छः और नयी भूलें करते हैं। फिर इनमेंसे कोई भूल प्रकट होनेपर उसे छिपानेके लिये नित नया उपक्रम करते हैं। इस क्रमका निरन्तर विस्तार होता चलता है। वास्तवमें भूल छिपती नहीं, देर-सबेर स्वतः प्रकट हो जाती है। भूलको छिपाना अग्निको रुईमें दबा या छिपाकर रखनेके समान कठिन है। जबतक उसे ठीक न किया जाय, तबतक वही भूल नयी-नयी भूलोंके रूपमें प्रकट होती और परेशान करती रहती है। उसका निवारण करना ही स्थायीरूपसे उससे मुक्त होनेका साधन है।

आध्यात्मिक दृष्टिसे छिपानेके स्थानपर भूलको स्वीकार कर लेना और भविष्यमें कभी न करनेका दृढ़ संकल्प स्थायीरूपसे करना आत्मसुधारका साधन है। आप चाहे कितने भी बड़े हों, चाहे किसी पद, स्थान, स्तर, पेशेके हों, भूलको सुधार कर सही मार्गपर आरूढ़ रहनेके लिये प्रस्तुत रहिये। भूलको स्वीकार करनेमें हीनता नहीं, बड़प्पन है; संकल्पकी दृढ़ता, सतर्कताकी प्रेरणा है। भूलकी स्वीकृति यह स्पष्ट करती है कि आप आत्म-उत्थानके लिये

जागरूक हैं। आगे बढ़ना चाहते हैं। छोटी भूलका भी प्रायश्चित्त तभी हो सकता है जब आप उसपर आत्मग्लानिका अनुभव करें और उसकी पुनरावृत्ति न होने दें। अपनी भूलका उत्तरदायित्व स्वयं अपनेपर ही लीजिये, दूसरेपर व्यर्थ ही न थोपिये।

अवश्य ही, जहाँ किसी स्वीकारोक्तिसे नयी विपरीत स्थिति उत्पन्न होती हो, वहाँ मनमें ही आत्मग्लानि कर लेनी चाहिये, सबके सामने उसे प्रकट नहीं करना चाहिये। भूलोंका यथार्थ ज्ञान होनेसे मनुष्यका जीवन नये मार्गसे प्रवाहित होना प्रारम्भ होता है। सूरदासको जब नारीके प्रेममें अनुरक्त होनेकी वासनामूलक भूलका ज्ञान हुआ तो वे उस घृणित मार्गसे बचकर महान् भक्त तथा महाकवि बन गये। भूलसे लाभ उठाकर सदा आत्मोन्नतिमें संलग्न रहिये।

अपने-आपका स्वामी बनकर रहिये!

(१)

अपने-आपका स्वामी बनकर रहिये! आप कहेंगे, 'हम तो स्वयं अपने स्वामी आप हैं ही; फिर इसका क्या तात्पर्य है?'

यदि आप अपनी इन्द्रियों, मानसिक विकारों और अन्तर्द्वन्द्वोंके वशमें हैं; यदि मनके झकोरोंमें बह जाते हैं; यदि आपको विविध क्षुद्र प्रलोभन नाच नचाया करते हैं और आप इनके वशमें हैं, तो वास्तवमें आप स्वामी नहीं, गुलाम ही हैं। अनियन्त्रित इन्द्रियोंकी दासता ऐसी ही है, जैसे कठपुतलीमें बँधे हुए सूक्ष्म तन्तु। जिधरको तन्तु हिले, उधरको ही कठपुतलीने हाथ-पाँव हिलाये। स्वयं कठपुतलीका कोई अस्तित्व नहीं है। उसी प्रकार इन्द्रियोंके दासका क्या ठिकाना!

मनुष्यके जीवनका पूरा विकास गलत स्थानों, गलत विचारों और गलत दृष्टिकोणोंसे मन और शरीरको बचाकर उचित मार्गपर आरूढ़ करानेसे होता है। यदि इन्द्रियोंको बेलगाम, यों ही जिधर चाहें चलनेके लिये छोड़ दिया जाय, तो निश्चय जानिये, वे आपको ऐसे गड्ढेमें ले जाकर पटकेंगी, जहाँसे उठना असम्भव हो जायगा! इसीलिये भारतीय संस्कृतिमें संयमको विशेष महत्ता प्रदान की गयी है।

मनुष्यकी वासनाएँ अनन्त हैं; इच्छाओंकी कोई गिनती नहीं, तृष्णाओंकी संख्या उतनी ही है जितने आकाशमें सितारे। एक वासना, एक इच्छा या एक तृष्णाके पूर्ण होते ही दस नयी तृष्णाओंका जन्म हो जाता है। इस प्रकार कामनाओं और नित्य नयी आवश्यकताओंका मोह-बन्धन लगातार हमें बाँधे रहता है। हम सांसारिक भोग-विलासके हरदम दास बने रहते हैं; इच्छाओंके प्रपंचमें जकड़े रहते हैं।

एक विद्वान्ने सत्य ही लिखा है, 'दुनियाको मत बाँधो, अपनेको बाँध लो।'

अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर लो तो तुम विजयी कहलाओगे।

अपनी इन्द्रियोंकी रखवाली वैसे ही करो, जैसे एक कर्तव्यनिष्ठ सिपाही खजानेके दरवाजेकी रक्षा करता है। यदि चोरोंको अवसर मिलेगा तो इन्हीं दरवाजोंसे घुसकर सारा खजाना खाली कर देंगे।

इसलिये खबरदार! दरवाजोंपर गफलत न होने देना। इन्द्रियोंपर पापका अधिकार न होने पाये, अन्यथा धर्म, नीति, चरित्र, पुण्य, कीर्ति, यश, प्रतिष्ठाका खजाना लुट जायगा।

मनके संयमसे स्वर्ग मिलता है, किंतु अनियन्त्रित इन्द्रियाँ तो नरककी ओर ले दौड़ती हैं। क्या तुम नहीं जानते कि उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घजीवन, दिव्य बुद्धि और सांसारिक सम्पदाएँ इन्द्रिय-निग्रहसे ही मिलते हैं, जिसने इन्द्रियोंके ऊपर काबू पा लिया है, वह हर परिस्थितिमें पर्वतकी तरह दृढ़ और स्थिर रह सकता है।

संयम वह गुण है जिसपर भारतीय संस्कृति टिकी है। हम एक संयमी जाति हैं। हमारे यहाँ संयमका बड़ा व्यापक प्रयोग है।

हमें चाहिये कि खान-पान, वाणी, विचार, चिन्तन—सर्वत्र ही आत्मसंयमका प्रयोग करें। हमारा मन जब फालतू, व्यर्थके अनीतिकर चिन्तनमें फँसता है, तो हमें उसपर कठोर नियन्त्रण करना चाहिये। जब क्षुद्र अनुराग, मोह, शंका आदि मनोविकारोंके बन्धनमें बँधता है, तब उसका निग्रह करना चाहिये। जब दूसरोंकी खराबियोंकी थोथी आलोचनामें फँसता है, तब उसे संयमपूर्वक रोकना चाहिये।

(२)

दैनिक जीवनमें ही संयमका आत्मशिक्षण और अभ्यास होना चाहिये। यदि हम समझें कि दो-चार दिनके साधारणसे अभ्याससे यह कार्य हो जायगा, तो यह हमारी भूल है। संयमका क्षेत्र अति विस्तृत है। प्रत्येक मोर्चेपर संयमका अभ्यास आवश्यक है।

मान लीजिये, आपके मनमें स्वादिष्ट भोजनकी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। आप पहले अपना दैनिक भोजन करते हैं। उसके बाद कुछ दूध-रबड़ी खाते हैं। फिर मिठाई सामने आ जाती है तो आप उस ओर आकृष्ट हो जाते हैं

और स्वास्थ्यकी कुछ परवा न कर अनाप-शनाप मिठाई खा जाते हैं। यह असंयम आपके स्वास्थ्यको नष्ट करनेवाला और आत्मिक पतनका द्योतक है। अनियन्त्रित जिह्वावाले व्यक्ति कभी जीवनका आनन्द नहीं ले पाते। अधिक भोजनका परिणाम अधिक आलस्य और अहितकर चिन्तन है। इन्द्रियोंको और भी उत्तेजित करने और विकारोंको बढ़ानेका साधन है।

आप किसी मादक द्रव्य—मद्य, भंग, सिगरेट, गाँजा, चाय, काफीके बन्धनमें बँध गये हैं, इनके बिना आपको शून्यता प्रतीत होती है। अत: समझ लीजिये कि आपके चरित्रमें संयमकी कमी है।

आपके नेत्र घृणास्पद, वासनासे भीगे दृश्योंको देखनेको दौड़ते हैं। बड़े वेगसे सिनेमाके चलचित्रों, नृत्यों, नग्न मानव-शरीरोंकी ओर आकृष्ट होते हैं, तो यह मनकी दुर्बलताके चिह्न हैं।

आपके कान संगीत (प्राय: उत्तेजक निन्द्य गाने) की ओर भागते हैं। अपने वास्तविक उद्देश्यपर मन एकाग्र न कर आप उस सस्ते संगीतकी ओर खिंच जाते हैं, तो आप बन्धनमें पड़ गये हैं।

आपको जहाँ बोलना चाहिये, वहाँ आप बोलते नहीं। जहाँ नहीं बोलना चाहिये, वहाँ निरन्तर बकवास करते हैं, भटक जाते हैं, आवेशमें आ जाते हैं, अपशब्दोंतकका उच्चारण कर बैठते हैं और सबके बुरे बनते हैं। इस अवसरपर भी आपको आत्मसंयमसे ही लाभ हो सकता है।

साँझसे ही आप बिस्तर पकड़ लेते हैं और दस घंटे निद्रा या तन्द्रामें पड़े रहते हैं। मध्याह्नको भी भोजनके पश्चात् एक-दो घंटे सो जाते हैं। निद्रासे ही पीछा नहीं छूटता। सारे दिन निद्रा ही सताया करती है। ऐसी अमर्यादित निद्राके वशमें रहनेवाला कैसे कुछ ठोस कार्य कर सकता है? अधिक भोजनका फल अधिक निद्रा, अधिक निद्राका अर्थ आलस्य और आलस्यका अर्थ सार्वत्रिक पतन और सर्वनाश है।

यदि संयम न हो और हमारे कार्य ऊपर लिखे तरीकोंसे ही चलते रहें, तो हम अपना समग्र जीवन खान-पान, व्यर्थ चिन्तन, दोष-दर्शन, इन्द्रिय-पूर्ति और निद्रामें ही समाप्त कर दें। पर ऐसा नहीं होता। ईश्वरने हमें एक ऐसी

शक्ति दी है, जिसे विवेक कहते हैं। यह विवेक हमें मर्यादा, नियम-बन्धन और नाप-तोलकर चलना सिखाता है। विवेक होनेपर हम स्वयं अपने मनके द्रष्टा बन जाते हैं। अपने मनके व्यापारकी अच्छाई-बुराई देखते हैं। निरुपयोगी और फालतू क्रियाओंका निरीक्षण करते हैं।

भीष्म एवं युधिष्ठिरके संवादमेंसे ये वाक्य विचारणीय हैं—

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः।
तत्रावगाहं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा॥

'धर्मराज! तुम उस आत्मारूपी नदीमें डुबकी लगाकर स्नान करो, जो संयमरूपी पवित्र तीर्थ है, जिसमें सत्यरूपी जल भरा है, शील जिसका तट है और जिसमें दयारूपी लहरें उठ रही हैं। इसीसे आत्मा शुद्ध होगी। जलसे अन्तरात्माकी शुद्धि नहीं हो सकती।'

तमोगुणों अर्थात् प्रमाद, आलस्य, मोह, निद्रा, वासना, शिथिलता— आदिसे मुक्तिके लिये केवल संयमके अभ्यासकी आवश्यकता है। विषयोंके ध्यान अथवा चिन्तनसे उनमें आसक्ति हो जाती है, उस आसक्तिसे उनकी प्राप्तिकी इच्छा होती है और तमोगुणके इच्छित फल मिलनेसे सर्वनाश हो जाता है। अतः चौबीसों घंटों अपने-आपको संयमपूर्ण नियमोंमें बाँध रखना चाहिये।

नियम-बन्धन एक मानसिक बन्धन है। जब आप मनमें यह दृढ़ निश्चय करते हैं कि अमुक नियमोंसे रहेंगे या अमुक-अमुक नियमोंका जीवनमें पालन करेंगे, तो आप मन-ही-मन एक गुप्त शक्तिसे अपने जीवन और कार्योंको बँधा हुआ पाते हैं। नियमोंके पालनका निश्चय ही एक साधन है। इसमें प्रारम्भमें मन और शरीरको कुछ कठिनाई अवश्य पड़ती है, पर बार-बार नियमोंका पालन करनेसे मनका नियन्त्रण हो जाता है।

नियम हमें संयमकी शिक्षा देनेवाले अमूल्य अंकुश हैं, जो हमें उच्च प्रकारके सांस्कृतिक जीवनकी ओर ऊँचा उठाते हैं। नियमकी जंजीरोंमें बँधकर मनुष्य व्यर्थके निरुपयोगी कार्योंसे छूट जाता है। मन व्यर्थकी क्रियाओंसे बच जाता है। मनकी स्वतन्त्रताकी एक विशेष सीमा निर्धारित हो जाती है। इसकी मर्यादाके बाहर जाते ही हम चौंक जाते हैं। गुप्त मन हमें नियमोल्लंघन करनेपर

प्रताड़ित करता है। वस्तुत: हम फिर मनकी लगामको खींचकर उसकी निर्बाध स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगा देते हैं।

नियमोंमें बँधकर मनुष्यकी शक्तिका विकास होता है। व्यर्थ-चिन्तन, व्यर्थके कार्य और इन्द्रियोंके प्रलोभनोंसे बचकर आहार-विहारमें संयम लानेसे मनुष्यका शरीर श्रमी, बुद्धि विवेकवती और मन शक्तिशाली बनता है। जितेन्द्रियता व्यक्तिके निर्माणमें सर्वाधिक महत्त्व रखती है।

प्रकृति अपने नियम नहीं छोड़ती। इस संसारकी प्रत्येक गति कुछ गुप्त नियमोंके अनुसार चल रही है। ऋतुओंका आना-जाना, वृक्षोंके फल-फूल, पत्तियोंका उद्भव, जीवविज्ञानके नाना कार्य भौतिक विज्ञानके अनेक नियमोंपर चल रहे हैं। सृष्टि अपने नियम नहीं छोड़ती। समस्त विज्ञान हमें नियमोंका महत्त्व स्पष्ट कर रहे हैं। फिर, मनुष्य अपने नियमोंको छोड़कर कैसे उन्नति कर सकता है? मनुष्यकी अपरिमित शक्तिका विकास मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक नियमोंके पालनसे ही हो सकता है।

उदाहरणके लिये शारीरिक नियमोंको ही ले लीजिये। शरीर एक पेचीदा यन्त्र है। पर्याप्त श्रम, नियमित तथा संतुलित भोजन, मनोरंजन, छः-आठ घंटेकी गहरी निश्चिन्त निद्रा, पर्याप्त आराम, प्रसन्नता आदि आवश्यक हैं। यदि इनमेंसे किसी भी नियमको भंग कर लिया जाता है, तो जीवन अव्यवस्थित हो जाता है। फलत: रोग और शारीरिक कष्ट उत्पन्न हो जाते हैं। यही कारण है कि सजाके डरसे कोई भी शारीरिक नियमोंका उल्लंघन नहीं कर पाते। मानसिक और बौद्धिक नियमोंका अनेक बार अतिक्रमण होता है और मनका संतुलन नष्ट हो जाता है। अत: अपने-आपको कठोर नियमोंके बन्धनोंमें बाँधे रखिये। इससे आपकी सभी शक्तियाँ बढ़ती रहेंगी और अपव्यय न होगा। नियम टूटते ही संयम नष्ट हो जाता है और शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। मन-इन्द्रियोंके गुलाम न रहकर इनको नियन्त्रणमें रखना ही अपने-आपका स्वामी बनकर रहना है।

ईश्वरीय शक्तिकी जड़ आपके अंदर है

संसारमें हाथी, घोड़े, भैंसे, बैल इत्यादि बड़े शक्तिशाली जीव हैं। इनकी शारीरिक शक्तिकी सहायतासे मनुष्य बड़े-बड़े लट्ठे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाता है, पेड़ गिराता है, खेत जोतता है, कुँओंमेंसे जल निकालता है और भारी-भरकम शिलाखण्डोंको ढोता है। घोड़े तीव्र गतिसे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाते हैं और मनुष्यकी आज्ञाओंका पालन करते हैं; परंतु स्वयं हाथी, घोड़े, बैल इत्यादिको यह ज्ञान नहीं है कि शक्ति उनके अंदर छिपी है। वे उनकी पीठपर बैठे या डंडेसे हाँकते हुए आदमीमें शक्ति समझते हैं और चार पसलीके आदमीको आत्मसमर्पण कर देते हैं। यदि उन्हें किसी प्रकार यह ज्ञान हो जाय कि आदमीमें उनकी अपेक्षा बहुत कम शक्ति है, तो वे क्षणभरमें उसे धराशायी कर सकते हैं। घोड़े, हाथी कभी उसके वाहन नहीं रह सकते। सम्भव है वे मानवको ही अपना वाहन बना लें, पर उन्हें अपने जीवनभर अपनी गुप्त शक्तियोंका ज्ञान नहीं होता और वे छोटेसे मनुष्यके गुलाम बने रहते हैं।

मानव-समाजमें भी उपर्युक्त नियम लागू होता है। हमें दो प्रकारके व्यक्ति मिलते हैं। एक तो वे हैं, जिन्हें अभीतक अपनी गुप्त शक्तियोंका ज्ञान नहीं हुआ है, अन्धकारमें पड़े परतन्त्रता और बेबसीका जीवन व्यतीत कर रहे हैं। दूसरे वे हैं, जिन्हें अपनी शक्तियोंका ज्ञान हो चुका है। अधिकांश व्यक्ति प्रथम वर्गके हैं जिन्हें शक्तिका ज्ञान नहीं है। ये व्यक्ति सदा किस्मतको कोसा करते हैं। कभी संसारकी प्रतिकूलताको दोष दिया करते हैं। उन्हें स्वयं अपने ऊपर विश्वास नहीं है, अतः वे अपना जीवन परवशता, मजबूरी और लाचारीमें काट रहे हैं।

विश्वास कीजिये आपमें अनन्त शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। ईश्वरने अपने पुत्र—मनुष्यको असीम शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, दैवी आत्मिक शक्तियोंसे परिपूर्ण कर पृथ्वीपर भेजा है। आपकी शक्तियाँ इन्द्रके वज्रोंसे अधिक शक्तिशालिनी हैं। आपका मस्तिष्क शक्तियोंका विशाल भण्डार है। आपके शरीरके अंग-अंगमें बल, स्फूर्ति और तेज भरा हुआ है। आपकी आत्मा अद्भुत दैवी

सामर्थ्योंकी पुंज है। सूर्यके तेज तथा हृदयस्थ आत्मतेजमें कोई भेद नहीं है।

सच मानिये, आप ईश्वरके अंश हैं। ईश्वर सर्वोच्च शक्तियोंके केन्द्रबिन्दु हैं। वस्तुत: वे सभी शक्तियाँ बीजरूपसे आपमें विद्यमान हैं, जो ईश्वरमें हैं। ईश्वर सत्-चित्-आनन्दस्वरूप हैं। अभी आप अपने-आपको शरीर मानते हैं; पर वास्तवमें आप सत्-चित्-आनन्दस्वरूप आत्मा हैं। आप स्थूल नहीं, सूक्ष्म हैं। आप आत्मा हैं। आप अमर हैं। आप विश्वमें व्याप्त ईश्वरीय शक्ति हैं। आप दिव्य हैं। मनमें यह भाव मत लाइये कि 'मैं नीच हूँ। अशक्त हूँ। डरपोक अथवा कायर हूँ।' शक्तिकी जड़ आपके भीतर है। ईश्वरका राज्य आपके भीतर है। आप व्यर्थ ही ईश्वरीय शक्तियोंको दुर्बल मानवके बनाये मठ-आश्रमोंमें अथवा गिरजाघरोंमें ढूँढ़ते फिरते हैं। ईश्वरीय दिव्यतम शक्तिका आदिस्रोत तो स्वयं आपके अन्तरिक्षमें प्रवाहित हो रहा है। उसीको खोज निकालिये और दिव्य जीवन व्यतीत कीजिये।

कभी न कहिये कि आप अमुक कार्य करनेके योग्य नहीं हैं अथवा आपमें उसके लिये पर्याप्त बल या साधन नहीं हैं। आपमें सब प्रकारके उच्चतम सामर्थ्य भरे पड़े हैं। आप अपने निश्चय, बल, संकल्पकी दृढ़ता, अटूट परिश्रमसे जो चाहें कर सकते हैं, आपकी सदैव विजय होनी है। यदि अपने इष्ट मार्गपर लगे रहें तो आप परिस्थितियोंको अवश्य बदल सकेंगे। पराजयका विचार मनमें रखना एक खतरा है। इसे सदाके लिये निकाल देना चाहिये। जैसा विचार मनमें आयेगा, वैसा ही कार्य प्रकट होगा। जैसा बीज होगा, वैसा ही वृक्ष उत्पन्न होगा। अत: कमजोरी, निर्बलता, पराजय, हीनत्वके विचार रखना एक खतरा है। कभी भी वह कटु फल उत्पन्न कर सकता है; क्योंकि विचार तो एक सूक्ष्म सक्रिय तत्त्व है। विचारोंके परमाणु मन:प्रदेशमें बिखरकर उसे अपने अनुकूल बना लेते हैं। राग, द्वेष, घृणा, स्वार्थ और ईर्ष्याके विचारोंका दूषित वातावरण मनमें अशान्ति उत्पन्न करता और संतुलनको छिन्न-भिन्न कर देता है; नाना प्रकारके उद्वेग और उलझनें उत्पन्न कर देता है। अशान्ति, भय, घबराहट, चिड़चिड़ापन, अस्थिरता सब गलत प्रकारके विचारोंके दुष्परिणाम हैं।

अत: अपनी शक्तिके प्रति मनमें अविश्वासकी दीन-हीन भावना मत आने दीजिये। अपने मानसिक वातावरणको भय, भ्रान्ति, शंका, संदेह और चिन्ताके

मनोवेगोंसे मुक्त रखिये। ये निष्कृष्ट विचार मनुष्यकी शक्तिको पंगु करनेवाले हैं, अन्त:करणकी श्रद्धाकी दुर्बलताके सूचक हैं। अपने ऊपर विश्वास करना ऐसा मन्त्र है जिससे बल बढ़ता है।

जैसा हम देखते, सुनते या सोचते हैं, वैसा ही हमारे अन्तर्जगत्का निर्माण होता है। हम जो-जो वस्तुएँ बाह्य संसारमें देखते हैं, हमारी अभिरुचिके अनुसार उनका प्रभाव हमारे अन्त:करणपर पड़ता है। प्रत्येक अच्छी मालूम होनेवाली प्रतिक्रियासे हमारे मनमें एक मानसिक मार्ग बनता है। क्रमश: वैसा ही चिन्तन, विचार या कार्य करनेसे यह मानसिक मार्ग दृढ़ बनता जाता है। अन्तमें एक विचार ही आदत बनकर मनुष्यको अपना दास बना लेता है।

जो व्यक्ति अपनी शक्तियोंके प्रति असीम विश्वास बनाये रखने और उन्हें निरन्तर बढ़ानेका अभ्यास करता है, वह उन्नतिके पथपर चलता है। दूसरोंकी और अपने चरित्रकी अच्छाइयोंपर ध्यान लगाइये। सर्वत्र अच्छाइयाँ, शक्तियाँ, दैवी गुण देखनेसे मनुष्य स्वयं शक्तियों और गुणोंका केन्द्र बन जाता है।

अच्छाई देखनेकी आदत एक प्रकारका पारस है। जिसके पास अच्छाई देखनेकी आदत है, वह उसीकी शक्तिसे दिव्य गुणोंकी वृद्धि करता है। उस केन्द्रसे ऐसा विद्युत्-प्रकाश प्रसारित होता है, जिससे सर्वत्र सत्यता और दिव्यताका प्रकाश होता है। जिस स्थानपर नैतिक माधुर्य एकीभूत हो जाता है, वहीं सच्चा आत्मिक सौन्दर्य विद्यमान है। अत: यह मानकर चलिये कि आप असीम शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियोंके मालिक हैं।

शक्तियोंका निरन्तर उपयोग कीजिये

जो शक्तियाँ ईश्वरीय देनके रूपमें प्रयोग, उपकार या समाज-सेवा आदिके लिये आपको दी गयी हैं, उनका निरन्तर उपयोग कीजिये। प्रतिदिन उन्हें कार्यमें लेनेसे शक्तियोंका विकास होता है, पर निश्चेष्ट छोड़ देनेसे वे क्षीण हो जाती हैं। अंग्रेजीमें एक कहावत है—'प्रतिदिन काममें आनेवाली चाबी तेज चमकती है।' अर्थात् जो चाबी रोज काममें नहीं आती, वह जंग लगकर नष्ट हो जाती है। यही कहावत हमारी शक्तियोंके सम्बन्धमें भी है। हम जिस-जिस शक्तिसे काम लेते रहेंगे, वही पुष्ट रहेगी, शेष नष्ट हो जायगी। शक्तियाँ आपसे यह माँग करती हैं कि

उनसे निरन्तर काम लिया जाय, कभी खाली न छोड़ा जाय। वे उस भूतकी तरह हैं जिसे कुछ-न-कुछ काम चाहिये, जो कभी भी आलस्यमें नहीं बैठ सकता।

उदाहरणके लिये अपने शरीरको ही ले लीजिये। यदि आपको खूब खिलाया-पिलाया जाय और जेलखानेमें बंद कर दिया जाय, जहाँ आप सारे दिन चारपाईपर पड़े रहें, तो पाचनक्रिया और रक्तसंचारमें खराबी आने लगेगी, शरीर दुबला हो जायगा, एक-एक क्षण काटना दूभर हो जायगा, प्रगाढ़ निद्राका आनन्द आपको न मिल सकेगा, भूख-प्यास, चेहरेका सौन्दर्य सब क्षीण हो जायगा। हमारा शरीर एक मशीनकी तरह है। जैसे व्यर्थ पड़े रहनेसे अच्छे-से-अच्छे इंजिनको जंग चाट जाता है और उसे चलाना कठिन हो जाता है, उसी प्रकार पहलवान-से-पहलवान व्यक्ति भी केवल खाये और पड़ा रहे, तो रोगी हो जायगा। आपने प्रायः उन साधुओंको देखा होगा, जो एक हाथ ऊँचा उठाये रहते हैं। बहुत समय व्यतीत होनेपर वह सूख जाता है। उसमें रुधिरका संचार बंद हो जाता है। उस हाथकी शक्तिका उपयोग न होनेसे उसकी शक्तियाँ मारी जाती हैं। अतः हमें चाहिये कि अपने शरीरसे पर्याप्त कार्य लें, किसी अवयवको आलस्यके जंगमें न फँसने दें। शारीरिक शक्तियोंका उपयोग करनेसे शरीरका अंग-अंग शक्तिसे दमक उठेगा, हम बलवान् बन जायँगे, पुष्ट और बलिष्ठ हाथ-पाँवके स्वामी बनेंगे। व्यायाम क्या है? व्यायाम वह विधि है जिसके द्वारा शरीरके सभी अवयवोंसे काम लिया जाता है। फलतः शक्तियाँ बढ़ती हैं।

शरीरकी भाँति ही मस्तिष्क और बुद्धि भी निरन्तर उपयोग, नये-नये विषयोंके अध्ययन, स्वाध्याय, मनन, पठन-पाठन, भ्रमण, सद्ग्रन्थावलोकनसे बढ़ती है। प्रत्येक पुस्तक एक ऐसे मस्तिष्कका सत्संग है जिसके साथ रहकर हम नया ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। नये-नये व्यक्तियोंसे मिलिये; नये दृश्य, नयी-नयी घटनाएँ देखिये और उनमें सार-तत्त्व, अनुभवपूर्ण उपयोगी तत्त्वोंको ग्रहण कीजिये। इन अनुभवोंसे आपको जीवनयात्रामें लाभ होगा।

ग्रहण-शक्ति बढ़ाते चलिये

आपके अनुभव, संसारका इतिहास, समाजमें इर्द-गिर्द होनेवाली अनेक ऐसी घटनाएँ हैं, जिनसे आपका ज्ञान बढ़ सकता है। आपकी प्रत्येक गलती

आपको गुप्तरूपसे कुछ शिक्षा, कुछ उपदेश देती है, आपको आगे बढ़ाती है। इन अनुभवों, ग्राह्य वस्तुओं एवं उपदेशोंमें आप अपनी ग्रहण-शक्तिकी योग्यताके अनुसार ही उन्हें ग्रहण कर सकते हैं। यदि आप अपनी ग्रहण-शक्तिको बढ़ावें; जो देखते, सुनते या अनुभव करते हैं, उसे ग्रहण करें, स्मृतिमें रखें, तो प्रगतिके पथपर आगे बढ़ सकते हैं। जो घटनाएँ या अनुभव आपको मिलें, उन्हें ठीक तरह समझें, शंकाओंका समाधान करें, सार-सार ग्रहण करें और व्यर्थको भूलें, भविष्यमें गलती न करें तो पर्याप्त उन्नति कर सकते हैं।

यह विश्वास रखिये कि परिस्थिति-निर्माणकी योग्यता आपमें भरी हुई है। हर व्यक्ति स्वयं अपने पुरुषार्थसे अपने संसारका निर्माणकर्ता है। आप उच्चतम ईश्वरीय शक्तियोंकी सामर्थ्य लेकर चल रहे हैं। कोई दुष्ट आपका मार्ग अवरुद्ध नहीं कर सकता, बाधाएँ ठहर नहीं सकतीं; क्योंकि आपके शरीर, मन, कर्मसे परमेश्वरकी दिव्य शक्तियाँ प्रवाहित हो रही हैं। ईश्वर आपके द्वारा अपने शुभ कार्य कर रहा है। ईश्वर आपके भीतरसे चमक रहा है। ईश्वरत्वको अपने द्वारा प्रकट कीजिये, ईश्वरमें रहिये-सहिये। ईश्वर होकर सात्त्विक पदार्थ खाइये और ईश्वर होकर ही पवित्र पदार्थ पीजिये। ईश्वरमें श्वास लीजिये और सत्का साक्षात् कीजिये। शेष शक्तियाँ स्वयं आपके पीछे-पीछे आती रहेंगी।

यस्याखिलामीवहभिः सुमङ्गलै-
र्वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः।
प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगद्
यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३८। १२)

जब समस्त पापोंके नाशक प्रभुके परम मंगलमय गुण, कर्म और जन्मकी लीलाओंसे युक्त होकर वाणी उनका गान करती है, तब उस गानसे संसारमें जीवनकी स्फूर्ति होने लगती है, शोभाका संचार हो जाता है, सारी अपवित्रताएँ धुलकर पवित्रताका साम्राज्य छा जाता है; परंतु जिस वाणीसे उनके गुण, लीला और जन्मकी कथाएँ नहीं गायी जातीं, वह मुर्देको ही शोभित करनेवाली हैं।

शक्ति, सामर्थ्य और सफलता

मनुष्य शक्ति, सामर्थ्य और सफलताका सिपाही है, अज्ञान एवं मोहवश होकर अपने-आपको दीन, हीन, शक्तिविहीन समझता है। अपनी दैवी शक्तियोंको विस्मृतकर कायरका जीवन व्यतीत करना कितनी बड़ी मूर्खता है। दीनावस्थामें जन्म लिया, अभाव और दुःखोंमें पलते-पनपते रहे और विषादमय जीवन व्यतीत करते हुए मृत्युको प्राप्त हो गये—ऐसा जीवन किस अर्थ? यह तो सृष्टिकर्ता आदिपिता परमात्माका अपमान है।

परमेश्वर चाहते हैं कि मनुष्य अपनी गुप्त शक्ति, अगाध सामर्थ्य और सफलताको पहचानें और सामर्थ्यवान् जीवन व्यतीत करें, प्रतिष्ठित रहें, निरन्तर समुन्नत रहें। हम सबके लिये परमेश्वरने यश, ऐश्वर्य, मान, प्रतिष्ठाका बृहत् भण्डार इस विश्वके कोने-कोनेमें संचित कर रखा है। इन्हें हम योग्यता, ईमानदारी एवं परिश्रमसे प्राप्त करते हैं।

हमारी शक्तियोंका गुप्त केन्द्र हमारा अन्तर्मन है। हमारा मन सागरमें तैरते हुए आइस बर्ग (बर्फका पर्वत) की तरह है। जिस प्रकार आइस बर्गका आठवाँ भाग ऊपर सतहपर और शेष जलमग्न रहता है, उसी प्रकार मनुष्यकी कुछ ही शक्तियोंका विकास हो पाता है। हमारे मनके सात भाग अविकसित, निश्चेष्ट और आलस्यमें ही पड़े रहते हैं। हमारे गुप्त मनमें मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक शक्तियों एवं सामर्थ्योंका एक विशाल अंश विकासकी प्रतीक्षा और अवसर देखा करता है। हमारी गुप्त सामर्थ्य मनकी गुप्त कन्दराओंमें सुप्तावस्थामें निश्चेष्ट पड़ी जंग खाया करती है।

शक्ति और सामर्थ्यका गुप्त केन्द्र आपका गुप्त मन ही है। इसमें आपकी नाना गुप्त शक्तियाँ, योग्यताएँ और प्रतिभाएँ संचित रहती हैं। दूसरे शब्दोंमें, आपकी चेतनताके गुप्त भागमें शक्तिका वह केन्द्र रहता है, जिसे अज्ञात चेतना (Sub-conscious and Un-conscious) कहते हैं। इस केन्द्रस्थलमें अनेक मनोभाव, विचार, कल्पनाएँ और अनुभूतियाँ एकत्रित रहती हैं। आपके

संकल्प, मिथ्याविश्वास, भावनाएँ चुपचाप आपके जाग्रत् जीवनके कार्य-व्यापारको क्षण-क्षण प्रभावित किया करते हैं। इस केन्द्रके स्वास्थ्य, समुचित विकास और संतुलनपर आपकी सफलता निर्भर है। अज्ञात चेतनासे कार्य लेनेवाला आपका गुप्त मन जाग्रत् मनकी अपेक्षा अधिक सशक्त, जागरूक और सचेत है। तुच्छ-से-तुच्छ, हलकी-से-हलकी, छोटी-छोटी अनुभूतियाँ इसमें एकत्रित रहती हैं। दिन-रातके चौबीसों घंटे अन्तश्चेतनाका गुप्त व्यापार (Action) चला करता है। अज्ञात चेतनाका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है।

एक महात्माने अन्तश्चेतनाकी शक्ति और सामर्थ्यकी ओर संकेत करते हुए लिखा है, 'मेरे हृदयमें किसी अज्ञात देव-शक्तिका निवास है। वह मुझसे जैसा करवाता है, वैसा ही मैं करता हूँ।'

आपके लिये श्रेयस्कर यही है कि आप अपने गुप्त मनकी असंख्य शक्तियोंपर विश्वासकर जीवनमें प्रविष्ट हों। गुप्त मनसे ही शक्ति-सामर्थ्यका स्रोत फूट निकलेगा, आपकी व्यक्तिगत शक्तियोंका विकास होगा—ऐसा मानकर चलें। गुप्त मनके विकासका श्रेष्ठतम मनोवैज्ञानिक नियम सूचना या सजेशन (Suggestion and Auto-Suggestion) है। जो गुण, जो मानसिक, शारीरिक या बौद्धिक भावनात्मक शक्तियाँ आपको इष्ट हों, उन्हें दृढ़तापूर्वक गुप्त मनमें दुहराइये, चेतनाके स्तरपर रखिये, उन्हींमें रमण कीजिये। सूचनानुगामिता अर्थात् दिये हुए सजेशनोंके अनुसार कार्य करना आपके गुप्त मनका गुण है। संकेतोंकी दृढ़तासे पुनरावृत्ति कर आप स्वस्थ, विजयी, सामर्थ्यपूर्ण अन्तर्मनका निर्माण कर सकते हैं। अच्छी आत्मप्रेरणाएँ जब दृढ़तासे चेतनाके स्तरपर लायी जाती हैं, तब उनसे नवीन सामर्थ्योंका निर्माण होता है।

डॉ० गणपुलेका विचार है कि 'अन्तर्मनकी सूचनानुगामिताकी कोई सीमा नहीं है। इसी नींवपर मानसोपचारकी इमारत खड़ी की जा सकती है। अन्तर्मन यदि सूचनानुगामी न होता तो मानसोपचार शायद ही सम्भव हो सकता।' जो बात रोगोंके लिये सत्य है, वही शक्ति-सामर्थ्य-वृद्धिके लिये और भी सत्य है। यदि हम गुप्त मनको शक्ति-सामर्थ्यकी सूचनाओं (Suggestions) में ओतप्रोत रखें और दृढ़तापूर्वक उनमें विश्वास करें तो आन्तरिक शक्तिके केन्द्रोंको जाग्रत् कर सकते हैं। हमारे यहाँ कीर्तन, मनन, चिन्तन एवं अखण्ड

जाप संकेत-विधियाँ ही हैं, अखण्ड-कीर्तन, पठन, भजन, पूजन इत्यादिसे हमारे गुप्त मनकी शुभ-सात्त्विक शक्तियाँ जाग्रत् होती हैं। यदि हम अन्तर्मनको शक्ति-सामर्थ्यकी शुभ सूचनाएँ देना प्रारम्भ कर दें तो धीरे-धीरे वह उन्हें ग्रहण करने लगेगा और तदनुकूल उसका निर्माण हो जायगा। व्यक्तिमात्रको इसी महान् शक्तिकेन्द्रके शोधनद्वारा आन्तरिक सामर्थ्योंकी अभिवृद्धि करनी चाहिये।

विश्वास कीजिये, आपके भीतर ऐसी-ऐसी विशेषताएँ और गुप्त शक्तियाँ भरी पड़ी हैं कि उनके विकास एवं प्रदर्शनसे आप संसारको चमत्कृत कर सकते हैं। आपकी एक मौलिकता है, अपने व्यक्तित्वका अपना ही महत्त्व है। ये विशेषताएँ विशेषरूपसे आपको ही दी गयी हैं। अपनी रुचि, स्वभाव और चरित्रका अध्ययन कीजिये। अर्थात् अपनी विशेषता मालूम कीजिये—यही अग्रसर होनेकी आधारशिला है। विश्वका प्रत्येक पुरुष, बालक, स्त्री, यहाँतक कि जानवरतक एक निजी विशेषता लेकर पृथ्वीतलपर आया है। परमेश्वरने अन्य शक्तियाँ तो सामान्यरूपमें ही प्रदान की हैं, किंतु प्रत्येक व्यक्तिमें एक विशिष्टता (Strong point), एक महत्ता, एक खास तत्त्व अन्य तत्त्वोंकी अपेक्षा तीव्रतर है। जब कोई मनुष्य अपनी इस विशेषताको जान जाता है और निरन्तर उसीके विकासमें अग्रसर होता है, तब उस विशेष दिशामें वह सर्वाधिक उत्कृष्टताका उपार्जन करता है। उच्चतम स्थान सदा रिक्त रहता है। योग्यतम व्यक्तिके लिये हमेशा गुंजाइश रहती है।

क्या आपने कभी अपनी विशेषताएँ, अपनी प्रतिभा (Talents) को जाननेकी चेष्टा की है? क्या आपने आत्मनिरीक्षण किया है? प्रत्येक प्रगतिशील व्यक्ति अपने-आपको तर्ककी कसौटीपर कसकर इस महान् सत्यका साक्षात्कार कर सकता है। आप व्यापक दृष्टिसे अपने व्यक्तित्व, गुणों और विशेषताओंका अध्ययन करें और अपने मुख्य गुणका विकास प्रारम्भ करें। आत्मनिरीक्षण वह साधन है, जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने चरित्रको समझनेका प्रयत्न कर सकता है।

आत्मनिरीक्षणमें शान्त चित्त और स्थिर बुद्धि रखिये। इससे नीर-क्षीर-विवेकमें सहायता प्राप्त होती है। आवेश, उद्वेग और जल्दबाजीमें फँसे हुए

व्यक्ति प्राय: शान्तचित्त हो अपने व्यक्तित्वका अध्ययन नहीं कर पाते। वे उद्विग्न रहकर नीर-क्षीरको पृथक् करनेवाले विवेकसे सहायता नहीं ले सकते। कुछ व्यक्ति विचारों या धर्म, मत इत्यादिकी संकीर्णता तथा पाण्डित्यके मिथ्या दम्भमें अपने आत्माको इतना जकड़ लेते हैं कि विवेकका सच्चा प्रकाश उनमें नहीं हो पाता। संकीर्णता, परदोषदर्शन, अहंकार, दम्भ उनके विवेकको पंगु कर देते हैं। ज्ञानका मुक्त प्रभाव अवरुद्ध हो जाता है। उनकी वाणी तेजहीन और निस्सार हो जाती है।

मानसिक आलस्य (अर्थात् हानिकर मिथ्या विश्वासोंमें आबद्ध रहना, दकियानूसी विचार रखना) की घृणित गुदड़ी उतार फेंको और सत्यके व्यापक रूपको अनुभव करनेके लिये विवेकद्वारा रूढ़ियोंसे ऊपर उठो। स्वयं अपनी ओरसे मौलिक विचारधारामें संलग्न हो जाओ। जो व्यक्ति अपनी ओरसे प्रत्येक विषय एवं परिस्थितिपर विचार कर सकता है, वह समस्याका हल अवश्य निकाल लेता है।

आत्मनिरीक्षणसे मनका विकार दूर होता है और सत्यका प्रकाश प्रकट होता है। अपनी त्रुटियाँ ज्ञात होती हैं तथा सही मार्गपर आरूढ़ होनेके लिये आत्मिक बल प्राप्त होता है।

शान्तचित्त हो नेत्र मूँदकर किसी शान्त स्थानपर बैठ जाओ, शरीर और मनको शिथिल कर लो और सब सांसारिक विचारोंको हटाकर केवल 'आत्मनिरीक्षण' की भावनापर चित्तवृत्तियोंको एकाग्र करो। एक-एक कर अपने सम्पूर्ण दिन, सप्ताह, मास, वर्ष, जीवनके कार्योंकी आलोचना करो। जो कार्य तुम्हारे आदर्शोंसे गिरें, उनके प्रति ग्लानि तथा जो कसौटीपर खरे उतरें, उनके प्रति संतोष प्रकट करो। इस अन्तर्दृष्टिसे मनमें हलके कार्य स्वत: दूर होने लगेंगे और मन स्थायी महत्त्वके कार्योंमें ही रमण करेगा।

उज्ज्वल भविष्यके लिये मनमें नयी-नयी कल्पनाओंके सुमधुर स्वप्न भरे पूरे रखिये, 'मैं अपना जीवन सफल, सुखद, प्रेममय रखूँगा। मैं संसारमें आशा, उत्साह, बल, सुख-शान्तिकी अभिवृद्धि करूँगा। चित्रकारी, संगीत, काव्य, विद्या-द्वारा संसारमें आनन्द उत्पन्न करूँगा। स्वयं मेरा तथा मेरे सम्पर्कमें

आनेवाले अन्य व्यक्तियोंका जीवन सुख-शान्तिमय होगा।' आदि विचार एवं प्रेरक कल्पनाएँ मनमें जाग्रत् रखनेसे हमारा गुप्त मन इन्हीं मानसिक दशाओंमें चलता है। वस्तुत: मानसिक समृद्धिके लिये ऐसी उत्तम प्रेरणाएँ अति आवश्यक हैं।

ध्यानपूर्वक आत्मध्वनिको सुनते और तदनुसार कार्य करते चलिये। आत्मध्वनि पुष्ट, स्वस्थ और कल्याणकारी मार्गद्रष्टा है। उसका अनुसरण कर कार्य करनेसे अकल्याणकारी विचारों और दूषित कल्पनाओंसे मुक्ति प्राप्त होती है। सौ चक्षुओंवाले (Argus) की भाँति यह आवश्यक है कि आप मनकी प्रत्येक क्रियाका सूक्ष्म निरीक्षण करते और विरोधी घृणित विचारोंका तिरस्कार करते रहें। चित्तके प्रलोभनके साथ न प्रवाहित हो जायँ वरं उससे पृथक् होकर मनके द्रष्टा बनें। क्रमश: मनका व्यापार देखते-देखते और उसपर नियन्त्रण करते-करते आप तुरीयावस्थामें प्रविष्ट हो जायँगे। यही अभ्यास राजयोगकी सर्वोच्च समाधि है। जो साधक चित्तका निरीक्षण और नियन्त्रण कर मनोव्यापारको सही दिशामें रखनेका अभ्यास कर लेता है, उसने मानो साधनाकी पहली मंजिल पार कर ली है।

जीवनमें किसी निश्चित उद्देश्यकी रचना कीजिये। यह पर्याप्त सोच-विचारका विषय है। अधूरे सोच-विचारका दुष्परिणाम उद्देश्यको पुन:-पुन: छोड़ना होता है। फिर साधक किसी भी दिशामें आगे नहीं बढ़ पाता। अत: मित्रोंसे, विशेषज्ञों तथा स्वयं अपने अन्तर्मनसे विचार-विमर्श कर अपने जीवनोद्देश्यका निर्णय कीजिये और फिर पूर्ण श्रद्धासे उसकी प्राप्तिमें संलग्न हो जाइये।

श्रद्धा या आत्मविश्वास आपकी महत्त्वपूर्ण शक्ति है। जिन-जिन तत्त्वोंमें आपकी श्रद्धा है, वे आपको अवश्यमेव प्राप्त होनेवाले हैं। श्रद्धा आपकी सभी शक्तियोंके मूलमें रहनेवाली सार-स्वरूप है। प्रत्येक कार्य इसीके द्वारा सम्पन्न होता है। विश्वके सब सामर्थ्यवान् व्यक्ति इसी दिव्य शक्तिके बलपर जीवन-युद्धमें विजयी हुए हैं। यह आपके व्यक्तित्वमें पर्याप्त मात्रामें मौजूद है। इसे जाग्रत्भर करना है।

'मैं निर्विघ्न आगे बढ़ सकता हूँ। शक्ति और सामर्थ्य मुझमें प्रचुरतासे

विद्यमान हैं। मैं साधारण कार्योंमें अपनी मौलिकता प्रकट करता हूँ और पूरे जोरसे कार्य करता हूँ। सफलता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।'—जब मनुष्य इन संकेतोंमें पूर्ण विश्वाससे अग्रसर होता है, तब आत्मश्रद्धाकी दिव्य शक्ति उसमें धीरे-धीरे स्वत: प्रकट होती है।

विश्वास कीजिये कि आप शक्तिमान् हैं। विश्वास कीजिये कि अतुलित सामर्थ्योंका भंडार आपमें प्रचुरतासे भरा पड़ा है। विश्वास कीजिये कि आप जिस क्षेत्रमें चलेंगे, सफलता लेकर रहेंगे। विश्वास कीजिये कि आप अपनी सम्पूर्ण शक्ति एक ध्येयकी प्राप्तिमें एकाग्र कर देंगे। सच्चे धैर्य और लगनसे उसपर डटे रहेंगे। सत्य संकल्पसे अग्रसर होते रहेंगे। सत्यके प्रकाशमय रूपको देखेंगे। मन:शक्तिको अपनी शक्तियोंपर केन्द्रित रखनेसे आत्मश्रद्धाकी वृद्धि होती है।

जिस क्षण मनुष्यको अपनी शक्तियों, गुप्त सामर्थ्यों, गुप्त ज्ञानका विश्वास हो गया, उसी क्षणसे वह जीवन-जागृतिका एक नया पृष्ठ खोलता है। इस जागरण (Awakening) को सब धर्मोंसे उच्च समझिये। इसमें गहरी सत्यता निहित है। इस आत्मश्रद्धाके दिव्य बलको अनुभव कीजिये और अपने लक्ष्य, क्षेत्र या कार्यमें लगाइये। आपको नवीनता और सामर्थ्यका अनुभव होगा। स्मरण रखिये, श्रद्धा आपके आत्माका एक प्रमुख अंश है। मनुष्यकी सब सिद्धियाँ श्रद्धाके अनुपातमें ही प्राप्त होती हैं।

अनुभूत नियम है—'प्रत्येकको उसकी आत्मश्रद्धा, उसके आत्मविश्वासके अनुसार ही प्राप्त होती है।'—यही महानियम मनोवांछित वस्तु (सफलता) का निर्णय करता है। जितनी श्रद्धा, उतनी बल-बुद्धि, शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त होता है।

हम निरन्तर इस असीम शक्तिमय जगत्में आत्मश्रद्धाके अनुसार क्रीड़ा कर रहे हैं। हमारा जीवन-प्राण और सफलता हमें अपने विश्वासों और प्रयत्नोंके अनुसार प्राप्त हो रहा है। विघ्नोंके कारण जो आत्मश्रद्धा लुप्त हो चुकी है, उसे प्राप्त करनेमें सतत प्रयत्नशील रहिये। संशय, भय, कायरताका शिरश्छेद कीजिये। दृढ़ निश्चय, तीव्र इच्छा और प्रबल प्रयत्नद्वारा अपनी गुप्त सामर्थ्यको प्रकट कीजिये। शक्ति, सामर्थ्य और सफलता आपकी होकर रहेगी।

अमूल्य वचन

मनको वश करनेमें नियमानुवर्तितासे बड़ी सहायता मिलती है। सारे काम ठीक समय नियमानुसार होने चाहिये। परमार्थमें भी इससे बड़ा लाभ होता है।

मनके प्रत्येक कार्यपर विचार करना चाहिये।

मनके कहनेमें नहीं चलना चाहिये, जबतक यह मन वशमें नहीं हो जाता तबतक इसे परम शत्रु मानना चाहिये।

(**मनको वशमें करनेके कुछ उपाय** नामक पुस्तकसे)

स्त्रीके लिये मुख्य धर्म केवल पतिपरायणता ही है। और सारे धर्म तो गौण हैं और उनका आचरण भी केवल पतिकी प्रसन्नताके लिये ही किया जाता है।

जो पुरुष अपनी स्त्रियोंको कष्ट देते हैं, उनका यथाविधि भरण-पोषण और सत्कार नहीं करते वे अधर्म करते हैं।

स्त्री शरीरसे पतिकी सेवा करे, घरका सारा कार्य करे और मनसे परमात्माका चिन्तन करे।

(**स्त्रीधर्म प्रश्नोत्तरी** नामक पुस्तकसे)

दुर्दशाग्रस्त देशकी रक्षा ब्रह्मचर्यकी पुनः प्रतिष्ठासे ही हो सकती है। कच्ची नींवपर इमारत नहीं उठ सकती। इसी प्रकार ब्रह्मचर्यके बिना जीवन नहीं टिक सकता; यदि कहीं कुछ रहता है तो वह दुःखसे भरा हुआ रहता है।

कुछ लोगोंकी समझ है कि विवाहिता पत्नीके साथ चाहे जैसा व्यवहार किया जाय सब धर्म संगत है। परन्तु यह उनका भ्रम है।.....स्त्री-सम्बन्धी चर्चा कभी न की जाय।

(**ब्रह्मचर्य** नामक पुस्तकसे)